“कहानी प्रत्युष”

पाठ्य-पुस्तक

बी.सी.ए / बी.एस.सी (फाड)
(B.C.A., B.Sc.(FAD)- Language under AECC for the year 2021-22 onwards)

द्वितीय सेमिस्टर/ II SEMESTAR

संपादक
डॉ. नीता हिरेमठ
डॉ. प्रभु उपासे
डॉ. सुधामणी. एस

प्रकाशक
प्रसारांग
बेंगलूरू नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरू – 560001

KAHANI PRATYUSH

Edited by:

Dr. Neeta Hiremath
Dr. Prabhu Upase
Dr. Sudhamani. S

@बेंगलूरू नगर विश्वविद्यालय

प्रथम संस्करण – 2021

Pages: 87

प्रधान संपादक
डॉ. शेखर

मूल्य :-

प्रकाशक
प्रसारांग
बेंगलूरू नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरू – 560001

भूमिका

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय में 2021-22 शैक्षिक वर्ष से एन.ई.पी-2020 नियम (पद्धति) के अनुसार स्नातक वर्गों के लिए नया पाठ्यक्रम जारी किया जा रहा हैं।

इस पाठ्यक्रम की संरचना ऐसी की गई है कि इसके अध्ययन के पश्चात् हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी यह जान सके कि साहित्य का विश्लेषण और सराहना कैसे किया जाए और दिये गये पाठ को पढ़ने की समझ किस प्रकार विकसित की जाए, ताकि विद्यार्थी भाषा और साहित्य के उद्देश्य से भली-भाँति परिचित हो सके। जैसे विज्ञान और आदि विषयों के अध्ययन के साथ यह भी अधिक उपयोगी हैं। एन.ई.पी सेमिस्टर पद्धति के अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण किया गया हैं।

इस पृष्ठभूमि में हिन्दी अध्ययन-मण्डल ने विभागाध्यक्ष डॉ. शेखर जी के मार्गदर्शन में पाठ्य-पुस्तक का निर्माण किया है।

विश्वास है कि यह गद्य संकलन छात्र समुदाय के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। विश्वविद्यालय की यह शुभेच्छा है कि साहित्य और समाजशास्त्रीय विषयों के लिए भी अधिक उपयोगी और प्रासंगिक लगे। इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण में योग देनेवाले सभी के प्रति विश्वविद्यालय आभारी है।

डॉ. लिंगराज गांधी
कुलपति
बेंगलूर नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरु-560001

प्रधान संपादक की कलम से.....

बेंगलूरू नगर विश्वविध्यालय शैक्षिक क्षेत्र में नये-नये विषयों को अपने अध्ययन की सीमा में ले रहा है। अध्ययन को नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 2020 के अनुसार प्रस्तुति करने का प्रयत्न हो रहा है। साहित्यिक विषयों को आज की बदलती परिस्थिति के अनुसार रखने के उद्देश्य से पाठ्यक्रम को प्रस्तुत किया जा रहा है।

एन.ई.पी सेमिस्टर पध्दति के अनुसार स्नातक वर्गों के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण किया जा रहा है। इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण में योग देने वाले सम्पादकों के प्रति मैं आभारी हूँ।

इस नयी पाठ्य पुस्तक के निर्माण में कुलपति महोदय डॉ. लिंगराज गांधी जी ने अत्यधिक प्रोत्साहन दिया, तदर्थ मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

इस पाठ्यक्रम को नयी शिक्षा नीति के ध्येयोद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किया गया है। गद्य के विविध आयामों को इस पाठ्य पुस्तक में शामिल किये गए हैं। आशा है कि सभी विद्यार्थीगण इससे अवश्य लाभान्वित होंगे।

डॉ। शेखर
अध्यक्ष (बी।ओ।एस)
बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरु-560001

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	कहानियाँ	लेखक	पृ. सं.
I.	भूमिका		03
II.	प्रधान संपादक की कलम से.....		04
1.	सिकंदर की शपथ	- जयशंकर प्रसाद	06-13
2.	एक गौ	- जैनेन्द्र कुमार	14-31
3.	ठेस	- फणीश्वरनाथ रेणु	32-41
4.	जानवर और जानवर	-मोहन राकेश	42-72
5.	हृदय की पुकार	-अ. न. कृष्णराव	73-88
6.	पाँचवाँ बेटा	-नासिरा शर्मा	88-105

1. सिकंदर की शपथ

लेखक: जयशंकर प्रसाद

लेखक परिचय:-

प्रसाद जी का जन्म सन् 1889ई. में हुआ तथा मृत्यु सन् 1937 ई में हुई। प्रसाद जी का जन्म वाराणसी के एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। बचपन में ही पिता के निधन से पारिवारिक उत्तरदायित्व का बोझ इनके कधों पर आ गया। प्रसाद जी की प्रारंभिक शिक्षा का प्रबंध पहले घर पर ही हुआ। बाद में इन्हें क्वीन्स कॉलेज में अध्ययन हेतु भेजा गया। आठवीं तक औपचारिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद स्वाध्याय द्वारा उन्होंने संस्कृत, पाली, हिन्दी, उर्दू व अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य का विशद ज्ञान प्राप्त किया।

प्रसाद जी छायावाद के कवि, कथाकार, नाटककार, उपन्यासकार आदि रहे। इनके आने से ही हिंदी काव्य में खड़ी बोली के माधुर्य का विकास हुआ। यह आनंदवाद के समर्थक थे। इनके पिता बाबू देवीप्रसाद विद्यानुरागी थे, जिन्हें लोग सुँघनी साहु कहकर बुलाते थे। कामायनी इनका अन्यतम काव्य ग्रन्थ है, जिसकी तुलना संसार के श्रेष्ठ काव्यों से की जा सकती है। सत्यं शिवं सुन्दरम् का जीता जागता रूप प्रसाद के काव्य में मिलता है। मानव सौन्दर्य के साथ-साथ इन्होंने प्रकृति सौन्दर्य का सजीव एवं मौलिक वर्णन किया। इन्होंने ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली दोनों का प्रयोग किया है।

*****

1

सूर्य की चमकीली किरणों के साथ, यूनानियों के बरछे की चमक से मिंगलौर - दुर्ग घिरा हुआ है। यूनानियों के दुर्ग तोड़नेवाले यन्त्र दुर्ग की दीवालों से लगा दिये गये हैं और वे अपना कार्य बड़ी शीघ्रता के साथ कर रहे हैं। दुर्ग की दीवाल का एक हिस्सा टूटा और यूनानियों की सेना उसी भन्न मार्ग से जयनाद करती हुई घुसने लगी। पर वह उसी समय पहाड़ से टकराये हुए समुद्र की तरह फिरा दी गयी और भारतीय युवक वीरों की सेना उनका पीछा करती हुई दिखाई पड़ने लगी। सिकंदर उनके प्रचण्ड अस्त्राघात को रोकता पीछे हटने लगा।

अफगानिस्तान में अश्वक वीरों के साथ भारतीय वीर कहाँ से आ गये? यह शंका हो सकती है, किन्तु पाठकगण वे निमन्त्रित होकर उनकी रक्षा के लिये सुदूर से आये हैं, जो कि संख्या में केवल सात हजार होने पर भी ग्रीकों की असंख्य सेना को बराबर पराजित कर रहे हैं।

सिकंदर को उस सामान्य दुर्ग के अवरोध में तीन दिन व्यतीत हो गये। विजय की सम्भावना नहीं है, सिकंदर उदास होकरकैम्प में लौट गया और सोचने लगा। सोचने की बात ही है। ग़ाजा और परसिपोलिस आदि के विजेता को अफगानिस्तान के एक छोटे से दुर्ग के जीतने में इतना परिश्रम उठाकर भी सफलता मिलती नहीं दिखाई देती, उलटे कई बार उसे अपमानित होना पड़ा।

बैठे-बैठे सिकंदर को बहुत देर हो गयी। अन्धकार फैलकर संसार को छिपाने लगा, जैसे कोई कपटाचारी अपनी मन्त्रणा को छिपाता हो। केवल कभी-कभी दी-एक उल्लू उस भीषण रणभूमि में अपने भयावह शब्द को सुना देते हैं। सिकंदर ने सीटी देकर कुछ इंगित किया, एक वीर पुरुष सामने दिखाई पड़ा। सिकंदर ने उससे कुछ गुप्त बातें कीं, और वह चला गया। अन्धकार घनीभूत हो जाने पर सिंकदर भी उसी ओर उठकर चला, जिधर वह पहला सैनिक जा चुका था।

2

दुर्ग के उस भाग में, जो टूट चुका था, बहुत शीघ्रता से काम लगा हुआ था, जो बहुत शीघ्र कल की लड़ाई के लिये प्रस्तुत कर दिया गया और सब लोग विश्राम करने के लिये चले गये। केवल एक मनुष्य उसी स्थान पर प्रकाश डालकर कुछ देख रहा है। वह मनुष्य कभी तो खड़ा रहता है और कभी अपनी प्रकाश फैलानेवाली मशाल को लिये हुए दूसरी ओर चला जाता है। उस समय उस घोर अन्धकार में उस भयावह दुर्ग की प्रकाण्ड छाया और भी स्पष्ट हो जाती है। उसी छाया में छिपा हुआ सिकंदर खड़ा है। उसके हाथ में धनुष और बाण है, उसके सब अस्त उसके पास हैं। उसका मुख यदि कोई इस समय प्रकाश में देखता, तो अवश्य कहता कि यह कोई बड़ी भयानक बात सोच रहा है, क्योंकि उसका सुन्दर मुखमण्डल इस समय विचित्र भावों से भरा है।

अकस्मात् उसके मुख से एक प्रसन्नता का चीत्कार निकल पड़ा, जिसे उसने बहुत व्यग्र होकर छिपाया। समीप की झाड़ी से एक दूसरा मनुष्य निकल पड़ा, जिसने आकर सिकंदर से कहा- देर न कीजिये, क्योंकि यह वही है।

सिकंदर ने धनुष को ठीक करके एक विषमय बाण उस पर छोड़ा और उसे उसी दुर्ग पर टहलते हुए मनुष्य की ओर लक्ष्य करके छोड़ा। लक्ष्य ठीक था, वह मनुष्य लुढक़कर नीचे आ रहा। सिकंदर और उसके साथी ने झट जाकर उसे उठा लिया, किन्तु उसके चीत्कार से दुर्ग पर का एक प्रहरी झुककर देखने लगा। उसने प्रकाश डालकर पूछा- कौन है?

उत्तर मिला- मैं दुर्ग से नीचे गिर पड़ा हूँ।

प्रहरी ने कहा- घबड़ाइये मत, मैं डोरी लटकाता हूँ। डोरी बहुत जल्द लटका दी गयी, अफगान वेशधारी सिकंदर उसके सहारे ऊपर चढ़ गया। ऊपर जाकर सिकंदर ने उस प्रहरी को भी नीचे गिरा दिया, जिसे उसके साथी ने मार डाला और उसका वेश आप लेकर उस सीढ़ी से ऊपर चढ़ गया। जाने के पहले उसने अपनी छोटी-सी सेना को भी उसी जगह बुला लिया और धीरे-धीरे उसी रस्सी की सीढ़ी से वे सब ऊपर पहुँचा दिये।

3

दुर्ग के प्रकोष्ठ में सरदार की सुन्दर पत्नी बैठी हुई है। मदिरा-विलोल दृष्टि से कभी दर्पण में अपना सुन्दर मुख और कभी अपने नवीन नील वसन को देख रही है। उसका मुख लालसा की मदिरा से चमक चमक कर उसकी ही आँखों में

चकाचौंध पैदा कर रहा है। अकस्मात् 'प्यारे सरदार, कहकर वह चौंक पड़ी, पर उसकी प्रसन्नता उसी क्षण बदल गयी, जब उसने सरदार के वेश में दूसरे को देखा। सिकंदर का मानुषिक सौन्दर्य कुछ कम नहीं था, अबला-हृदय को और भी दुर्बल बना देने के लिये वह पर्याप्त था। वे एक-दूसरे को निर्निमेष दृष्टि से देखने लगे। पर अफगान-रमणी की शिथिलता देर तक न रही, उसने हृदय के सारे बल को एकत्र करके पूछा- तुम कौन हो? उत्तर मिला शाहंशाह सिकंदर रमणी ने पूछा- यह वस्त्र किस तरह मिला?

सिकंदर ने कहा- सरदार को मार डालने से। रमणी के मुख से चीत्कार के साथ ही निकल पड़ा क्या सरदार मारा गया?

सिकंदर- हाँ, अब वह इस लोक में नहीं है।

रमणी ने अपना मुख दोनों हाथों से ढक लिया, पर उसी क्षण उसके हाथ में एक चमकता हुआ छुरा दिखाई देने लगा।

सिकंदर घुटने के बल बैठ गया और बोला-सुन्दरी! एक जीव के लिये तुम्हारी दी तलवारें बहुत थीं, फिर तीसरी की क्या आवश्यकता है?

रमणी की दृढ़ता हट गयी और न जाने क्यों उसके हाथ का छुरा छटककर गिर पड़ा, वह भी घुटनों के बल बैठ गयी। सिकंदर ने उसका हाथ पकड़कर उठाया। अब उसने देखा कि सिकंदर अकेला नहीं है, उसके बहुत से सैनिक दुर्ग पर दिखाई दे रहे हैं। रमणी ने अपना हृदय दृढ़ किया और संदूक खोलकर एक जवाहिरात का डिब्बा ले आकर

सिकंदर के आगे रक्खा सिकंदर ने उसे देखकर कहा- मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है, दुर्ग पर मेरा अधिकार हो गया, इतना ही बहुत है।

दुर्ग के सिपाही यह देखकर कि शत्रु भीतर आ गया है, अस्त्र लेकर मारपीट करने पर तैयार हो गये। पर सरदार पत्नी ने उन्हें मना किया, क्योंकि उसे बतला दिया गया था कि सिकंदर की विजयवाहिनी दुर्ग के द्वार पर खड़ी है।

सिकंदर ने कहा-तुम घबड़ाओ मत, जिस तरह से तुम्हारी इच्छा होगी, उसी प्रकार सन्धि के नियम बनाये जायेंगे। अच्छा, में जाता हूँ। अब सिकंदर को थोड़ी दूर तक सरदार पत्नी पहुँचा गयी। सिकंदर थोड़ी सेना छोड़कर आप अपने शिविर में चला गया।

4

सन्धि हो गयी। सरदार पत्नी ने स्वीकार कर लिया कि दुर्ग सिकंदर के अधीन होगा। सिकंदर ने भी उसी को यहाँ की रानी बनाया और कहा- भारतीय योद्धा जो तुम्हारे यहाँ आये हैं, वे अपने देश को लौटकर चले जायँ। मैं उनके जाने में किसी प्रकार की बाधा न डालूँगा। सब बातें शपथपूर्वक स्वीकार कर ली गयीं।

राजपूत वीर अपने परिवार के साथ उस दुर्ग से निकल पड़े, स्वदेश की ओर चलने के लिए तैयार हुए। दुर्ग के समीप ही एक पहाड़ी पर उन्होंने अपना डेरा जमाया और भोजन करने का प्रबन्ध करने लगे।

भारतीय रमणियाँ जब अपने प्यारे पुत्रों और पतियों के लिये भोजन प्रस्तुत कर रहीं थीं, तो उनमें उस अफगान रमणी के बारे में बहुत बातें हो रही थीं, और वे सब उसे बड़ी घृणा की दृष्टि से देखने लगीं, क्योंकि उसने एक पति हत्याकारी को आत्म-समर्पण कर दिया था। भोजन के उपरान्त जब सब सैनिक विराम करने लगे तब युद्ध की बातें कहकर अपने चित्त को प्रसन्न करने लगे। थोड़ी देर नहीं बीती थी कि एक ग्रीक अश्वारोही उनके समीप आता दिखाई पड़ा, जिसे देखकर एक राजपूत युवक उठ खड़ा हुआ और उसकी प्रतीक्षा करने लगा।

ग्रीक सैनिक उसके समीप आकर बोला-शाहंशाह सिकंदर ने तुम लोगों को दया करके अपनी सेना में भरती करने का विचार किया है। आशा है कि इस सम्वाद से तुम लोग बहुत प्रसन्न होगे।

युवक बोल उठा- इस दया के लिये हम लोग कृतज्ञ हैं, पर अपने भाइयों पर अत्याचार करने में ग्रीकों का साथ देने के लिए हम लोग कभी प्रस्तुत नहीं हैं। ग्रीक तुम्हें प्रस्तुत होना चाहिये, क्योंकि शाहंशाह सिकंदर की आज्ञा है।

युवक नहीं महाशय, क्षमा कीजिये। हम लोग आशा करते हैं कि सन्धि के अनुसार हम लोग अपने देश को शान्तिपूर्वक लौट जायेंगे, इसमें बाधा न डाली जायगी।

ग्रीक क्या तुम लोग इस बात पर दृढ़ हो? एक बार और विचार कर उत्तर दी, क्योंकि उसी उत्तर पर तुम लोगों का जीवन मरण निर्भर होगा।

इस पर कुछ राजपूतों ने समवेत स्वर से कहा- हाँ हाँ, हम अपनी बात पर दृढ़ हैं, किन्तु सिकंदर, जिसने देवताओं के नाम से शपथ ली है, अपनी शपथ को न भूलेगा।

ग्रीक-सिकंदर ऐसा मूर्ख नहीं है कि आये हुए शत्रुओं को और दृढ़ होने का अवकाश दे। अस्तु अब तुम लोग मरने के लिए तैयार हो।

इतना कहकर वह ग्रीक अपने घोड़े को घुमाकर सीटी बजाने लगा, जिसे सुनकर अगणित ग्रीक-सेना उन थोड़े से हिन्दुओं पर टूट पड़ी।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि उन्होंने प्राण-प्रण से युद्ध किया और जब तक कि उनमें एक भी बचा बराबर लड़ता गया। क्यों न हो, जब उनकी प्यारी स्त्रियाँ उन्हें अस्त्रहीन देखकर तलवार देती थीं और हँसती हुई अपने प्यारे पतियों की युद्ध क्रिया देखती थीं। रणचण्डियाँ भी अकर्मण्य न रहीं, जीवन देकर अपना धर्म रखा ग्रीकों की तलवारों ने उनके बच्चों को भी रोने न दिया, क्योंकि पिशाच सैनिकों के हाथ सभी मारे गये।

अज्ञात स्थान में निराश्रय होकर उन सब वीरों ने प्राण दिये। भारतीय लोग उनका नाम भी नहीं जानते!

~@~

2. एक गौ

लेखक:- जैनेन्द्र कुमार

लेखक परिचय:-

जैनेन्द्र कुमार जी का जन्म 2 जनवरी, 1905 ई. में कौड़ियारगंज जिला अलीगढ़ में हुआ। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा हस्तिनापुर तथा उच्च शिक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हुई। आपने असहयोग आन्दोलन में भाग लिया था। आपको गिरफ्तार करके जेल भी भेजा गया। निधन 24 दिसम्बर, 1988 ई में हुई।

उपन्यास तथा कहानी दोनों क्षेत्रों में आपको ख्याति मिलती हैं। परख, सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, सुखदा, विवर्त, व्यतीत आदि आपके कई उपन्याम प्रकाशित हुए हैं। कहानी के क्षेत्र में भी आपका प्रचुर योगदान है। फाँसी, वातायन, दी चिड़ियाँ, पाजेब, जयसन्धि कई कहानी संकलन प्रकाश में आ चुके हैं। आपकी कहानियों में प्रेम, वात्सल्य, क्रान्ति, राष्ट्रीयता, दर्शन आदि की अभिव्यक्ति हुई है।

***

हिसार और उसके आसपास के हिस्से को हरियाणा कहते हैं। यहाँ के लोग खूब तगडे होते हैं गाय-बैल और भी तन्दुरुस्त और कद्दावर होते हैं। यहाँ की नस्ल मशहूर है।

उसी हरियाणा के एक गाँव में एक जमींदार रहता था। दो पुस्त पहले उसके घराने की हालात थी। घी-दूध, बाल-बच्छे थे, मान प्रतिष्ठा थी। पर धीरे-धीरे अवस्था बिगड़ गई। आज हीरासिंह को यह समझ नहीं आता है कि अपनी बीवी

दो बच्चे, खुद और अपनी सुन्दरिया गाय की परवरिश कैसे करें।

राज की अमलदारी बदल गई है और लोगों की निगाहें भी फिर गई है। शहर बड़े से और बड़े हो गए हैं और वहाँ ऐसी ऊँची-ऊँची हवेलियों खड़ी हो जाती है कि उनकी ओर देखा भी नहीं जाता। कल-कारखाने और पुतलीघर खड़े हो गए हैं। बाइसिकलें और मोटरें आ गई है। इनसे जिन्दगी तेज पड़ गई है और बाजार में महँगाई आ गई है। इधर गाँव उजाड़ हो गए हैं और खुशहाली की जगह बेचारगी फैल रही है। हरियाणा के बैल खूबसूरत तो अब भी मालूम होते हैं और उन्हें देखकर खुशी भी होती हैं, लेकिन अब उनकी उतनी माँग नहीं है। चुनाँचे हीरासिंह भी अपने बाप-दादाओं के समान जरूरी आदमी अब नहीं रह गया है। हीरासिंह को बहुत-सी बातें बहुत कम समझ में आती है। यह आँखें फाड़कर देखना चाहता है, यह क्या बात है कि उसके घराने का महत्व इतना कम रह गया है। अन्त में उसने सोचा कि यह भाग्य है, नहीं हो और क्या?

उसकी गाय सुन्दरिया, डीलडौल में इतनी बड़ी और इतनी तन्दुरुस्त थी कि लोगों को ईर्ष्या होती थी। उसी सुन्दरिया को अब हीरासिंह ठीक-ठीक खाना नहीं जुटा पाता था। इस गाय पर उसे गर्व था। बहुत ही मुहब्बत से उसे उसने पाला था। नन्ही बछिया थी। तब से वह हीरासिंह के यहाँ थी। हीरासिंह को अपनी गरीबी का अपने लिए इतना दुख नहीं था। जितना उस गाय के लिए। जब उसके भी खाने

पीने में तोड़ आने लगी तो हीरासिंह के मन को बड़ी विधा हुई। क्या वह आको बेच दे? इसी गाँव के पटवारी ने दी सौ रूपए उस गाय के लगा दिये थे।दो सौ रुपए थोड़े नहीं होते। लेकिन अव्वल तो सुन्दरिया को बेचे कैसे? इसमें उसकी आत्मा दुखती थी। फिर इसी गाँव में सुन्दरिया दूसरे के यहाँ बंधी रहे और हीरासिंह अपने बाप-दादों के घर बैठा टुकुर-टुकुर देखा करे, यह हीरासिंह से कैसे सहा जाएगा।

उसका बडा लडका जवाहर सिंह बडा तगडा जवान था। उन्नीस वर्ष की उम्र थी, मसें भीगी थी, पर इस उम्र में अपने से ड्योढे को कुछ नहीं समझता था। सुन्दरिया गाय को मौसी कहा करता था। उसे मानता भी उतना ही था। हीरासिंह के मन में दुर्दिन देखकर कभी गाय को बेचने की बात उठती थी, तो जवाहर सिंह के डर से रह जाता था। ऐसा हुआ तो जवाहर डंडा उठाकर रार मोल लेकर, उसकी फिर वहाँ से खोलकर नहीं ले जाएगा, इसका भरोसा हीरासिंह को नहीं था। जवाहर सिंह उजड्ड ही तो है। सुन्दरिया के मामले में भला वह किसी को सुननेवाला है। ऐसे नाहक रार के बीज बढ जाएँगे, और क्या?

पर दुर्भाग्य भी सिर पर से टलता न था। पैसे-पैसे को तंगी होने लगी थी। तो सब भुगत लिया जाए पर अपने आश्रितजनों को भूख भुगती जाए?

एक दिन जवाहर सिंह को बुलाकर कहा,- "मैं दिल्ली जाता हूँ। वहाँ बडी-बडी कोटियाँ है, बड़े बड़े लोग हैं। हमारे गाँव के कितने ही आदमी वहाँ रहते हैं। सो कोई नौकरी

मिल ही जाएगी। नहीं तो तुम्हीं सोचो, ऐसे कैसे काम चलेगा? तुम यहाँ देखभील रखना। वहाँ ठीक होने पर तुम सबको बुला लूँगा"।

दिल्ली जाकर एक सेठ के यहाँ चौकीदार की नौकरी उसे मिल गई। हवेली के बाहर ड्योढी में एक कोठरी रहने को भी मिल गई।

एक रोज सेठ ने हीरासिंह से कहा, "तुम तो हरियाणा की तरफ के रहने वाले हो न! वहाँ की गाएँ बड़ी अच्छी होती हैं। हमें दूध की तकलीफ है, उधर की एक गाय का बन्दोबस्त हमारे लिए करके दी।"

हीरासिंह ने पूछा, "कितने दूध की और कितनी कीमत की चाहिए?"

सेठ ने कहा, "कीमत जो मुनासिब हो, देंगे, पर दूध थन के नीचे खूब होना चाहिए। गाय खूब सुन्दर व तगड़ी होनी चाहिए।"

हीरासिंह सुन्दरिया की बात सोचने लगा। उसने कहा, "एक है तो मेरी निगाह में, पर उसका मालिक बेचे तब है।"

सेठ ने कहा, "कैसी गाय है।"

हीरासिंह ने कहा, "गौ तो ऐसी है कि माँ समान और दूध देने में कामधेनु। पन्द्रह सैर दूध उसके तले उतरता है।"

सेठ ने पूछा "तो उसका मालिक किसी शर्त पर नहीं बेच सकता?"

हीरासिंह "उसके दो सौ रूपए लग गए हैं।"

सेठ, "दो सौ! चलो पाँच हम और ज्यादा देंगे।

पाँच रुपए और ज्यादा की बात सुनकर हीरासिंह को दुख हुआ। वह कुछ शरम से और कुछ ताने में मुसकराया भी।

सेठ ने कहा, "ऐसी भी क्या बात है? दी-चार रुपए और बढ़ती दे देंगे। बस।"

हीरासिंह ने कहा, "अच्छी बात है, मैं कहूँगा।"

हीरासिंह को इस घड़ी दुख बहुत हो रहा था। एक तो इसलिए कि वह जानता था कि गाय बेचने के लिए यह राजी होता जा रहा है। दूसरे, दुख इसलिए भी हुआ कि उसने सेठ से सच्ची बात नहीं कही।

सेठ ने कहा, "देखो, गाय अच्छी है और उसके तले पन्द्रह सेर दूध पक्का है, तो पाँच-दस रुपाए के पीछे बात कच्ची मत करना।"

हीरासिंह ने तब लज्जा से कहा, "जी, सच्ची बात यह है कि गाय वह अपनी ही है।"

सेठजी ने खुश होकर कहा,"तब तो फिर ठीक बात है, तुम तो अपने आदमी ठहरे। तुम्हारे लिए जैसे दो सौ वैसे ही पाँच, गाय कब ले आओगे? मेरी राय में आज ही चले जाओ।"

हीरासिंह शरम के मारे कुछ न बोल सका। उसने सोचा था कि गौ आखिर बेचनी तो होगी ही। अच्छा है कि वह गाँव से दूर कहीं ऐसी जगह रहे। रुपए पाँच कम, पाँच ज्यादा -यह कोई ऐसी बात नहीं, पर गाँव के पटवारी के यहाँ तो सुन्दरिया उससे दी ही न जाएगी। उसने सेठ के जवाब में कहा, "जो हुक्म, मैं आज हो चला जाता हूँ, लेकिन एक बात

है- मेरा लड़का जवाहर राजी हो जाए तब है। वह लडका अक्खड है और गाय को प्यार भी करता है।"

सेठ ने समझा, यह कुछ और पैसे पाने का बहाना है। बोला, "अच्छा, दो सौ पाँच ले लेना। चलो, दो सौ सात ही सही। पर गाय लाओ तो। दूध पन्द्रह मेर पक्के को शर्त है।

हीरासिंह लाज से गडा जाने लगा। वह कैसे बताए कि रुपए की बात बिलकुल नहीं है। तिस पर ये सेठ तो उसके अन्नदाता है। फिर ये ऐसी बातें करते हैं? उसे जवाहर की तरफ से सचमुच शंका थी। लेकिन इन गरीबी के दिनों में गाय दिन-पर-दिन एक समस्या होती जाती थी। उसकी रखना भारी पड़ रहा था। पर अपने तन क्या काटा जाता है? काटते कितनी वेदना होती है। यही हीरासिंह का हाल था। सुन्दरिया क्या केवल एक गौ थी? वह तो गौ 'माता' थी- उसके परिवार का अंग थी। उसी को रूपए के मोल बेचना आसान काम न था।

पर हीरासिंह को यह ढाढस था कि सेठ के यहाँ रहकर गौ उसकी आँखों के आगे तो रहेगी। सेवा-टहल भी यहाँ वह गौ की कर लिया करेगा। उसकी टहल करके यहाँ उसके चित्त को कुछ तो सुख रहेगा। तब उसने सेठ से कहा, "रुपए की बात बिलकुल नहीं है, सेठजी! वह लड़का जवाहर ऐसा ही है, पूरा बेबस जीव है। खैर, आप कहें तो आज मैं जाता हूँ। उसे समझा-बुझा सका तो गौ को लेता ही आऊँगा। उसका नाम हमने "सुन्दरिया" रखा है।"

"हाँ, लेते आना। पर पन्द्रह सेर की बात हैं न? इत्मीनान हो जाए तब सौदा पक्का रहेगा कुछ रुपए चाहिए तो ले जाओ।"

हीरासिंह बहुत ही लज्जित हुआ। उसकी गौ के बारे में बे-ऐतवारी उसे अच्छी नहीं लगती थी। उसने कहा,-"जी, रुपए कहाँ जाते हैं, फिर मिल जाएँगे। पर यह कहे देता हूँ कि वह एक ही है। मुकाबले की दूसरी मिल जाए तो मुझे जो चाहो कहना।"

सेठजों ने स्नेहभाव में दो सौ रुपए माँगकर उसी वक्त हीरासिंह को थमा दिये और कहा, "देखो हीरासिंह आज ही चले जाओ और गाय कब तक आ जाएगी? परसो तक।"

हीरासिंह ने कहा, "यहाँ से पचास कोस गाँव है तीन रोज तो आने-जाने में लग जाएँगे।"

सेठजी ने कहा, "पचास कोस? - तीस कोस की मंजिल एक दिन में की जाती है, तुम मुझको क्या समझते हो? तीस कोस की मंजिल सेठ पैदल एक दिन छोड तीन दिन में भी कर लें तो हीरासिंह जाने।" लेकिन वह कुछ बोला नहीं।

सेठ ने कहा, "अच्छा, तो चौथे दिन गाय यहाँ आ जाए।"
हीरासिंह ने कहा,"जी, कम-से-कम पाँच रोज तो लगेंगे ही।"

सेठ ने कहा, "पाँच"

हीरासिंह ने विनीत भाव से कहा, "दूर जगह है, सेठजी।"

सेठ ने कहा, "अच्छी बात है। देर मत लगाना, यहाँ काम का हर्ज होगा, जानते हो। खैर, इन दिनों तुम्हारी तनख्वाह न काटने को कह देंगे।"

हीरासिंह ने जवाब में कुछ नहीं कहा और वह उसी रोज चला भी गया।

ज्यों-त्यों जवाहरसिंह को समझा-बुझाकर गाय वह आया। देखकर सेठ बडे खुश हुए। सचमुच वैसी सुन्दर स्वस्थ गौ, उन्होंने अब तक न देखी थी। हीरासिंह ने खुद उसे सानी-पानी किया, सहलाया और अपने हाथों से उसे दुहा। दूध पन्द्रह सेर से कुछ ऊपर ही बैठा। सेठजी ने दी सौ के ऊपर सात रुपए होरा को दिये और अपने घोसी को बुलाकर गौ उसके सिपुर्द की।

रुपए तो लिये लेकिन हीरासिंह का जी भरा आ रहा था। जब सेठजी का घोसी गाय को ले जाने लगा, तब गाय उसके साथ चलना ही नहीं चाहती थी। घोसी ने झल्लाकर उसे मारने को रस्सी भी उठाई, लेकिन सेठजी ने मना कर दिया। वह गौ इतनी भोली मालूम होती थी कि सचमुच घोसी का हाथ भी उसे मारने की हिम्मत से ही उठ सका था। अब जब वह हाथ इस भाँति उठ करके भी रुका रह गया तब घोसी को खुशी हुई क्योंकि गौ की आँखों के कोने में गाढ़े-गाढ़े आँसू भर रहे थे। वे आँसू धीमे-धीमे बहने भी लगे।

हीरासिंह ने कहा,"सेठजी, इस गौ की नौकरी पर मुझे कर दीजिए, चाहे तनख्वाह में दी रुपए कम कर दीजिएगा।"

सेठजी ने कहा, "हीरासिंह, तुम्हारे जैसा ईमानदार चौकीदार हमें दूसरा कौन मिलेगा? तनख्वाह तो हम तुम्हारी एक रुपया और बड़ा सकते हैं, पर तुमको ड्योढ़ी पर ही रहना होगा।"

उस समय हीरासिंह को बहुत दुख हुआ। यह दुख इस बात से और दुःसह हो गया कि सेठ का विश्वास उस पर है। वह गौ को सम्बोधन करके बोला, "जाओ बहिनी, जाओ।"

गौ ने सुनकर मुँह जरा ऊपर उठाकर हीरासिंह की तरफ देखा, मानो पूछती हो, "जाऊँ ? तुम कहते हो, जाऊँ?"

हीरासिंह उसके पास आ गया। उसने गले पर थपथपाया, माथे पर हाथ फेरा, गलबन्ध सहलाया और काँपती वाणी में कहा, "जाओ बहिनी सुन्दरिया, जाओ। मैं कहीं दूर थोड़े ही हूँ। मैं तो यहाँ ही हूँ।"

हीरासिंह के आशीर्वाद में भीगती हुई गी चुप खड़ी थी। जाने की बात पर जरा मुँह ऊपर उठाया और भरी आँखों से उसे देखती हुई मानो पूछने लगी, "जाऊँ? तुम कहते हो, जाऊँ? "

हीरासिंह ने थपथपाते हुए पुकारकर कहा,"जाओ बहिनी सोच ना करो।" फिर घोसी को आश्वासन देकर कहा, "लो, अब ले जाओ, अब चली जाएगी।" यह कहकर हीरासिंह ने गाय के गले की रस्सी अपने हाथों उस घोसी को थमा दी। गाय फिर चुपचाप डग-डग उसी के पीछे-पीछे चली गई।

हीरासिंह एकटक देखता रहा। उसने आँसू नहीं आने दिये। हाथ के नोटों को वह जोर से पकड़े रहा। नोट पर वह मुट्ठी इतनी जोर से कस गई कि अगर उन नोटों में जान होती तो बेचारे रो उठते। वे कुचले-कुचलाए मुट्ठी में बँधे रह गए।

उसके बाद सेठजी वहाँ से चले गए और हीरासिंह भी चलकर अपनी कोठरी में आ गया। कुछ देर वह उस हवेली

की ड्योढ़ी के बाहर शून्य भाव में देखता रहा। भीतर हवेली थी, यह तुम्हारे है। बाहर बिछा शहर था, उसके पार खुला मैदान और खुली हवा थी और उनके बीच में आने-जाने का रास्ता छोड़े हुए फिर भी उस रास्ते को रोके हुए यह ड्योढ़ी थी। कुछ देर तो उसे देखता रहा, फिर मुँह झुकाकर हुक्का गुड़गुड़ाने लगा। अनबूझ भाव वह इस व्याप्त विस्तृत शून्य में देखता रह गया।

लेकिन अगले दिन गड़बड़ उपस्थित हुई। सेठजी ने हीरासिंह को बुलाकर कहा, "यह तुम मुझे धोखा तो नहीं देना चाहते? गाय के नीचे सवेरे पाँच सेर भो तो दूध नहीं उतरा। शाम को भी यही हाल रहा। मेरी आँखों में तुम धूल झोंकना चाहते हो।

हीरासिंह ने बड़ी कठिनाई से कहा, "मैंने तो पन्द्रह सेर ऊपर दुहकर आपके सामने दे दिया।

"दे दिया होगा। लेकिन अब क्या बात हो गई? तुमने उसे कोई दवा तो नहीं खिला दी है?"

हीरासिंह का जी दुख और ग्लानि से कठिन हो आया। उसने कहा, "दवा मैंने नहीं खिलाई और कोई दवा दूध ज्यादा नहीं निकलवा सकती। इसके आगे और मैं कुछ नहीं जानता।"

सेठजी ने कहा, "तो जाकर अपनी गाय को देखो। अगर दूध नहीं देती, तो मुझे मुफ्त का जुरमाना भुगतना है।"

हीरासिंह गाय के पास गया। वह उसकी गरदन से लगकर खड़ा हो गया। उसने गाय को चूमा, फिर कहा,

"सुन्दरिया, तू रुसवाई क्यों कराती है? तेरे बारे में किसी से धोखा करूंगा ?"

गाय ने उसी भाँति मुँह ऊपर उठाया, मानो पूछा- मुझे कहते हो ? बोलो, मुझे क्या कहते हो ?

हीरासिंह ने घोसी से कहा, "बंटा लाओ तो!"

घोसी ने कहा, "मैं आध घंटा पहले दुह चुका हूँ।"

हीरासिंह ने कहा, "तुम बंटा लाओ।'

उसके बाद साढ़े तेरह सेर दूध उसके तले से पक्का तौलकर हीरासिंह ने घोसी को दे दिया। कहा, "यह दूध सेठजी को दे दो।" फिर गौ के गले पर अपना सिर डालकर हीरासिंह बोला, "सुन्दरी! देख, मेरी ओछी मत कर। तू यहाँ है, मैं दूर हूँ तो क्या उसमें मुझे सुख है ?"

गौ मुँह झुकाकर वैसी खड़ी रही। "देखना सुन्दरिया! मेरी रुसवाई न करना।" गदगद कंठ से यह कहकर उसे थपथपाते हुए, हीरासिंह चला गया।

पर गौ अपनी विथा किससे कहे? कह नहीं पाती, इसी से सही नहीं जाती। क्या वह हीरासिंह को रुसवाई चाहती है? उसे सह सकती है? लेकिन दूध नीचे आता ही नहीं, तब क्या करें? वह तो चढ़-चढ़ जाता है, सूख-सूख जाता है, गौ बेचारी करे तो क्या ?

सो फिर शिकायत हो चली। आए दिन बखेड़े खड़े होने लगे। शाम इतना दूध दिया, सवेरे उससे भी कम दिया। कल तो चढ़ा ही गई थी। इतने उनहार-मुनहार किए, बस में ही न आई। गाय है कि बवाल है। जी को एक सामत ही पाल ली।

सेठ ने कहा, "क्या हीरासिंह, यह क्या है?".

हीरासिंह ने कहा, "मैं क्या जानता हूँ।"

सेठ ने कहा, "क्या यह सरासर धोखा नहीं है ?"

हीरासिंह चुप रह गया।

सेठ ने कहा, "ऐसा ही है तो ले जाओ अपनी गाय और रुपए मेरे वापस करो।"

लेकिन रुपए हीरासिंह गाँव भेज चुका था और उसमें से काफ़ी रकम वहाँ के मकान की मरम्मत में काम आ चुकी थी। हीरासिंह फिर चुप रह गया।

सेठजी ने कहा, "क्या कहते हो ?"

हीरासिंह क्या कहे ?

सेठजी ने कहा, "अच्छा, तनख्वाह में से रकम कटती जाएगी और जब पूरी हो जाएगी, तो गाव अपनी ले जाना।"

हीरासिंह ने सुन लिया और सुनकर वह अपनी ड्योढ़ी में आ गया। उस ड्योड़ी के इधर हवेली है, उधर शहर बिछा है, जिसके पास खुला मैदान है और खुली हवा है। दोनों ओर कुछ देर शून्य-भाव से देखकर वह हुक्का गुड़गुड़ाने लगा।

अगले दिन सवेरे से ही एक प्रश्न भिन्न-भिन्न प्रकार की आलोचना-विवेचना का विषय बना हुआ था। बात यह थी कि सवेरे बहुत-सा दूध ड्योढ़ी में बिखरा हुआ पाया गया। उससे पहले शाम को सुन्दरी गाय ने दूध देने से बिलकुल इनकार कर दिया था। उसे बहलाया गया, फुसलाया गया, धमकाया और पीटा भी गया था, फिर भी वह राह पर न आई थी। अब

यह इतना सारा दूध यहाँ कैसे बिखरा है? यह यहाँ आया तो कहाँ से आया?

लोगों का अनुमान था कि कोई दूध लेकर ड्योढ़ी में आया था, या ड्योढ़ी में जा रहा था, उसके हाथ से यह बिखर गया है? अब वह दूध लेकर आने वाला आदमी कौन हो सकता है? लोगों का गुमान यह था कि हीरासिंह ही वह व्यक्ति हो सकता है। हीरासिंह चुपचाप था। वह लज्जित और सचमुच अभियुक्त मालूम होता था। हीरासिंह के दोषी होने का अनुमान या कारण यह भी था कि हवेली के और नौकर उससे प्रसन्न न थे। वह नौकर के ढंग का नौकर ही न था। नौकरी से आगे बढ़कर स्वामिभक्ति का भी उसे चाव था, जो कि नौकरी के लिए असहा दुर्गुण नहीं तो और क्या है?

सेठजी ने पूछा, "हीरासिंह, यह क्या बात है?"

हीरासिंह चुप रह गया।

सेठजी ने कहा, "इसका पता लगाओ हीरासिंह, नहीं तो अच्छा न होगा।"

हीरासिंह सिर झुकाकर रह गया, पर कुछ ही देर में उसने सहसा चमत्कृत होकर पूछा, "रात गाय खुली तो नहीं रह गई थी? जरूर यही बात है। आप इसकी खबर तो लीजिए।"

घोसी को बुलाकर पूछा गया तो उसने कहा कि ऐसी चूक कभी उसके जनम जीते-जी हो ही नहीं सकती है और कल रात तो हुजूर, पक्के दावे के साथ गाय ठीक तरह से बँधी रही है।

हीरासिंह ने कहा, "ऐसा हो ही नहीं सकता।'

सेठजी ने कहा, "तो फिर तुम्हारी समझ में क्या हो सकता है ? "

हीरासिंह ने स्थिर होकर कहा, "गाय रात को आकर ड्योढ़ी में खड़ी रही और अपना दूध गिरा गई।"

यह कहकर हीरासिंह इतना लीन हो रहा था कि मानो गौ के इस दुष्कृत्य पर अतिशय कृतज्ञता में डूब गया हो।

सेठजी ऐसी अनहोनी बात पर कुछ देर भी नहीं ठहरे। उन्होंने कहा,"ऐसी मसनूई बातें और से कहना।जाओ, खबर लगाओ कि वह कौन आदमी है, जिसकी यह करतूत है ?'

हीरासिंह ड्योढ़ी में चला गया। ड्योढ़ी इस हवेली और उस दुनिया के दरमियान है, उसके लिए घर बनी हुई है। क्षणेक शून्य में देखते रहकर फिर सिर झुकाकर वह हुक्का गुड़गुड़ाने लगा।

रात को जब वह सो रहा था, उसे मालूम हुआ कि दरवाजे पर कुछ रगड़ की आवाज आई उठकर दरवाजा खोला कि देखता क्या है, सुन्दरिया खड़ी है। इस गौ के भीतर इन दिनों बहुत विधा घुटकर रह गई थी। वह तकलीफ बाहर आना ही चाहती थी। हीरासिंह ने देखा, मुँह ऊपर उठाकर उसकी सुन्दरिया उसे अभियुक्त की आँखों से देख रही है, मानो अत्यन्त लज्जित बनी क्षमा याचना कर रही हो। कहती हो, 'मैं अपराधिनी हूँ लेकिन मुझे क्षमा कर देना। मैं बड़ी दुखियाँ हूँ।'

हीरासिंह ने कहा, "बहिनी, यह तुमने क्या किया ?"

कैसा आश्चर्य। देखता क्या है कि गौ मानव-वाणी में बोल रही है, "मैं क्या करूँ?"

हीरासिंह ने कहा, "बहन, तुम बेवफाई क्यों करती हो? सेठ को अपना दूध क्यों नहीं देती हो ? बहिनी ! वह अब तुम्हारे मालिक हैं।" कहते-कहते हीरासिंह की वाणी काँप गई, मानो कहीं भीतर इस मालिक होने की बात के सच होने में उसको खुद शंका हो।

सुन्दरीया ने पूछा, "मालिक ! मालिक क्या होता है ?"

हीरासिंह ने कहा, "तुम्हारी कीमत के रुपए सेठ ने मुझे दे दिये थे, ऐसे वह तुम्हारे मालिक हुए।"

गौ ने कहा, "ऐसे तुम्हारे यहाँ मालिक हुआ करते हैं, मैं इस बात को जानती नहीं हूँ। लेकिन तुम मुझे प्रेम करते हो, सो तुम मेरे क्या हो ?"

हौरासिंह ने धीर भाव से कहा, "मैं तुम्हारा कुछ भी नहीं हूँ।"

गौ बोली, "तुम मेरे कुछ भी नहीं हो, यह तुम कहते हो? तुम झूठ भी नहीं कहते होगे तुम जानते हो, वह मैं नहीं जानती। लेकिन मालिक की बात के साथ दूध देने की बात मुझसे तुम कैसी करते हो? मालिक हैं, तो मैं उनके घर में उनके खूंटे से बँधी रहती तो हूँ। रात में भी चोरी कर आई हूँ, तो भी उनकी ड्योढी से बाहर नहीं हूँ। पर दूध तो मेरे उतरता ही नहीं, उसका क्या करूँ? मेरे भीतर का दूध मेरी पूरी तरह बस में नहीं है। कल रात आप-ही-आप इतना सारा दूध यहाँ बिखर गया। मैं यह सोचकर नहीं आई थी। हाँ, मुझे लगता है कि बिखरेगा तो वह यों ही बिखर जाएगा। तुम

ड्योढ़ी में रहोगे तो शायद ड्योढ़ी में बिखर जाएगा। ड्योढ़ी से पार चले जाओगे तो शायद भीतर-ही-भीतर सूख जाएगा। मैं जानती हूँ, इससे तुम्हें दुख पहुँचा है। मुझे भी दुख पहुँचता है। शायद यह ठीक बात नहीं हो। मेरा यहाँ तक आ जाना भी ठीक बात नहीं हो। लेकिन जितना मेरा बस है, मैं कह चुकी हूँ। तुमने रुपए लिये हैं और सेठ मेरे मालिक हैं, तो उनके घर में उनके खूँटे से मैं रह लूँगी। रह तो मैं रही ही हूँ। रुपए लेन-देन से अधिकार का और प्रेम का लेन-देन जिस भाव से तुम्हारी दुनिया में होता है, उसे मैं नहीं जानती। फिर भी तुम्हारी दुनिया में तुम्हारे नियम मानती जाऊँगी। लेकिन तुम अपने हृदय का इतना स्नेह देते हो, तब, तुम मेरे कुछ भी नहीं हो और अपने हृदय का दूध बिलकुल तुम्हारे प्रति नहीं वहा सकती-"यह बात मैं किस विध मान लूँ? मुझसे नहीं मानी जाती। सच, नहीं मानी जाती। फिर भी जो तुम कहोगे, वह मैं सब-कुछ मानूँगी।"

हीरासिंह ने विषाद-भरे स्वर में पूछा,"तो मैं तुम्हारा क्या हूँ?"

गौ ने कहा, "तो क्या मेरे, कहने की बात है। फिर शब्द में विशेष नहीं जानती। दुख है, वही मेरे पास है। उससे जो शब्द बन सकते हैं उन्हीं तक मेरी पहुँच हैं। आगे शब्दों में मेरी गति नहीं है, जो भाव मन में हैं, उनके लिए संज्ञा मेरे जुटाए जुटती नहीं। पशु जो मैं हूँ। संज्ञा तुम्हारे समाज की स्वीकृति के लिए जरूरी होती होगी, लेकिन मैं तुम्हारे समाज की नहीं हूँ। मैं निरी गौ हूँ। तब मैं कह सकती हूँ कि तुम मेरे कोई हो, कोई न हो, दूध मेरा किसी और के प्रति नहीं

बहेगा। इसमें मैं या तुम या कोई और शायद कुछ भी न कर सकेंगे। इस बात में मुझ पर मेरा भी बस कैसे चलेगा? तुम जानते हो, मैं कितनी परबस हूँ ?

हीरासिंह गौ के कंठ से लिपटकर सुबकने लगा, "सुन्दरिया, तो मैं क्या करूँ ?''

गौ ने कम्पित वाणी में कहा, "मैं क्या कहूँ? क्या न कहूँ ?"

हीरासिंह ने कहा, "जो कहो, मैं वही करूँगा सुन्दरी लेकिन रुपए का लेन-देन है, लेकिन मेरी गौ, मैंने जान लिया कि उससे आगे भी कुछ है। शायद उससे आगे ही सब-कुछ है। जो कहो, वही करूँगा, मेरी सुन्दरिया।"

गौ ने कहा, "जो तुमसे सुन रही हूँ, उससे आगे मेरी कुछ चाहना नहीं है। इतने में ही मेरी सारी कामनाएँ भर गई हैं। आगे तो तुम्हारी इच्छा है और मेरा तन है। मेरा विश्वास करो, मैं कुछ नहीं माँगती और मैं सब सह लूँगी।'

सुनकर हीरासिंह विह्वल हो आया। उसके आँसू रोके न रुके। वह गरदन से लिपटकर तरह-तरह के प्रेम सम्बोधन करने लगा। उसके बाद हीरासिंह ने बहुत-से आश्वासन के वचनों के साथ गौ को विदा किया।

अगले दिन सबेरे उसने सेठजी से कहा, "आप मुझसे जितने महीने की चाहे कसकर चाकरी लीजिए, पर गौ आज ही यहाँ से हमारे गाँव चली जाएगी। रुपए जब आपके चुकता हो जाएँ, मुझसे कह दीजिएगा तब मैं भी छुट्टी ले जाऊँगा।"

सेठजी की पहले तो राजी होने की तबीयत न हुई, फिर उन्होंने कहा, "हाँ, ले जाओ, ले जाओ। पूरा-पूरा ढाई सौ रुपए का तावान तुम्हें भरना पड़ेगा।

हीरासिंह तावान भरने को खुशी से राजी हुआ और गौ को उसी रोज ले गया।

~@~

3. ठेस

लेखक: फणीश्वरनाथ रेणु

लेखक परिचय:-

फणीश्वर नाथ 'रेणु' का जन्म 4 मार्च 1921 को बिहार के अररिया जिले के औराही हिंगना गाँव में हुआ था। हिन्दी भाषा के साहित्यकार 'रेणु' जी का पहल उपन्यास 'मैला आंचल' को बहुत ख्याति मिली और इसके लिए उन्हें "पद्मश्री पुरस्कार" से सम्मानित किया गया।

'रेणु' जी ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से 1942 में इन्टरमीडिएट किया और उसके बाद वे स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। 1950 में उन्होंने नेपाली क्रांतिकारी आन्दोलन में भी हिस्सा लिया जिसके परिणाम स्वरुप नेपाल में जनतंत्र की स्थापना हुई। 'रेणु' जी की लेखन-शैली वर्णणात्मक थी जिसमें पात्र के प्रत्येक मनोवैज्ञानिक सोच का विवरण लुभावने तरीके से किया जाता था। पात्रों का चरित्र-निर्माण काफी तेजी से होता था क्योंकि पात्र एक सामान्य-सरल मानव मन (प्रायः) के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता था। इनकी लगभग हर कहानी में पात्रों की सोच घटनाओं से प्रधान होती थी। एक आदिम रात्रि की महक इसका एक सुंदर उदाहरण है।

रेणु जी ने ग्राम्य जीवन के लोकगीतों का उन्होंने अपने कथा साहित्य में बड़ा ही सर्जनात्मक प्रयोग किया।

*****

खेती-बारी के समय, गांव के किसान सिरचन की गिनती नहीं करते। लोग उसकी बेकार ही नहीं, बेगार समझते हैं। इसलिए, खेत-खलिहान की मजदूरी के लिए कोई नहीं बुलाने जाता है सिरचन को क्या होगा, उसकी बुला कर? दूसरे मजदूर खेत पहुंच कर एक तिहाई काम कर चुकेंगे, तब कहीं सिरचन राय हाथ में खुरपी डुलाता दिखाई पड़ेगा पगडंडी पर तौल तौल कर पांव रखता हुआ, धीरे-धीरे मुफ्त में मजदूरी देनी हो तो और बात है।

आज सिरचन को मुफ़्तखोर, कामचोर या चटोर कह ले कोई। एक समय था, जबकि उसकी मड़ैया के पास बड़े-बड़े बाबू लोगों की सवारियां बंधी रहती थीं। उसे लोग पूछते ही नहीं थे, उसकी खुशामद भी करते थे।

अरे... सिरचन भाई! अब तो तुम्हारे ही हाथ में यह कारीगरी रह गई है सारे इलाके में एक दिन भी समय निकाल कर चलो।

'कल बड़े भैया की चिट्ठी आई है शहर से सिरचन से एक जोड़ा चिक बनवा कर भेज दी।

मुझे याद है... मेरी माँ जब कभी सिरचन को बुलाने के लिए कहती, मैं पहले ही पूछ लेता, भोग क्या क्या लगेगा?'

माँ हँस कर कहती, जा-जा, बेचारा मेरे काम में पूजा-भोग की बात नहीं उठाता कभी।

ब्राह्मण टोली के पंचानंद चौधरी के छोटे लड़के को एक बार मेरे सामने ही बेपानी कर दिया था सिरचन ने, तुम्हारी भाभी नाखून से खांट कर तरकारी परोसती है। और

इमली का रस साल कर कढ़ी तो हम कहार-कुम्हारों की घरवाली बनाती हैं। तुम्हारी भाभी ने कहां से बनाई!'

इसलिए सिरचन को बुलाने से पहले मैं माँ को पूछ लेता..

सिरचन को देखते ही माँ हुलस कर कहती, आओ सिरचना आज नेनू मथ रही थी, तो तुम्हारी याद आई। घी की डाड़ी (खखोरन) के साथ चूड़ा तुमको बहुत पसंद है न... और बड़ी बेटी ने ससुराल से संवाद भेजा है, उसकी ननद रूठी हुई है, मोथी के शीतलपाटी के लिए।

सिरचन अपनी पनियायी जीभ को संभाल कर हंसता, घी की सुगंध सूंघ कर आ रहा हूँ, काकी! नहीं तो इस शादी ब्याह के मौसम में दम मारने की भी छुट्टी कहां मिलती है?'

सिरचन जाति का कारीगर है।

मैंने घंटों बैठ कर उसके काम करने के ढंग को देखा है। एक-एक मोथी और पटेर को हाथ में लेकर बड़े जातां से उसकी कुच्ची बनाता। फिर, कुच्चियों को रंगने से ले कर सुतली सुलझाने में पूरा दिन समाप्त... काम करते समय उसकी तन्मयता में जरा भी बाधा पड़ी कि गेंहुअन सांप की तरह फुफकार उठता, फिर किसी दूसरे से करवा लीजिए काम सिरचन मुँहजोर है, कामचोर नहीं। बिना मज़दूरी के पेट भर भात पर काम करनेवाला कारीगर। दूध में कोई मिठाई न मिले, तो कोई बात नहीं, किंतु बात में ज़रा भी झाल वह नहीं बर्दाश्त कर सकता।

सिरचन को लोग चटोर भी समझते हैं... तली बघारी हुई तरकारी, दही की कढ़ी, मलाई वाला दूध, इन सब का

प्रबंध पहले कर लो, तब सिरचन को बुलाओ; दुम हिलाता हुआ हाज़िर हो जाएगा। खाने-पीने में चिकनाई की कमी हुई कि काम की सारी चिकनाई ख़त्मा काम अधूरा रख कर उठ खड़ा होगा, आज तो अब अधकपाली दर्द से माथा टनटना रहा है। थोड़ा-सा रह गया है, किसी दिन आ कर पूरा कर दूँगा... किसी दिन माने कभी नहीं!

मोथी घास और पटरे की रंगीन शीतलपाटी, बांस की तीलियों की झिलमिलाती चिक, सतरंगे डोर के मोढ़े, भूसी चुन्नी रखने के लिए मूंज की रस्सी के बड़े-बड़े जाले, हलवाहों के लिए ताल के सूखे पत्तों की छतरी टोपी तथा इसी तरह के बहुत से काम हैं, जिन्हें सिरचन के सिवा गांव में और कोई नहीं जानता। यह दूसरी बात है कि अब गांव में ऐसे कामों को बेकाम का काम समझते हैं लोग बेकाम का काम, जिसकी मजदूरी में अनाज या पैसे देने की कोई ज़रूरत नहीं। पेट भर खिला दी, काम पूरा होने पर एकाध पुराना धुराना कपड़ा दे कर विदा करो। वह कुछ भी नहीं बोलेगा...

कुछ भी नहीं बोलेगा, ऐसी बात नहीं। सिरचन को बुलाने वाले जानते हैं, सिरचन बात करने में भी कारीगर है... महाजन टोले के भज्जू महाजन की बेटी सिरचन की बात सुन कर तिलमिला उठी थी ठहरो! मैं माँ से जा कर कहती हूँ। इतनी बड़ी बात!'

बड़ी बात ही है बिटिया! बड़े लोगों की बस बात ही बड़ी होती है। नहीं तो दी-दी पटेर की पटियों का काम सिर्फ़ खेसारी का सत्तू खिला कर कोई करवाए भला? यह तुम्हारी

माँ ही कर सकती है बबुनी!' सिरचन ने मुस्कुरा कर जवाब दिया था।

उस बार मेरी सबसे छोटी बहन की विदाई होने वाली थी। पहली बार ससुराल जा रही थी मानू, मानू के दूल्हे ने पहले ही बड़ी भाभी को खत लिख कर चेतावनी दे दी है, मानू के साथ मिठाई की पतीली न आए, कोई बात नहीं। तीन जोड़ी फैशनेबल चिक और पटेर की दी शीतलपाटियों के बिना आएगी मानू तो...'

भाभी ने हंस कर कहा, बैरंग वापस!' इसलिए एक सप्ताह से पहले से ही सिरचन को बुला कर काम पर तैनात करवा दिया था माँ ने देख सिरचन! इस बार नई धोती दूंगी, असली मोहर छाप वाली धोती। मन लगा कर ऐसा काम करो कि देखने वाले देख कर देखते ही रह जाएं।'

पान जैसी पतली छुरी से बांस की तीलियों और कमानियों को चिकनाता हुआ सिरचन अपने काम में लग गया। रंगीन सुतलियों से झब्बे डाल कर वह चिक बुनने बैठा। डेढ़ हाथ की बिनाई देख कर ही लोग समझ गए कि इस बार एक दम नए फ़ैशन की चीज़ बन रही है, जो पहले कभी नहीं बनी।

मंझली भाभी से नहीं रहा गया, परदे के आड़ से बोली, पहले ऐसा जानती कि मोहर छाप वाली धोती देने से ही अच्छी चीज़ बनती है तो भैया को ख़बर भेज देती। काम में व्यस्त सिरचन के कानों में बात पड़ गई। बोला, मोहर छापवाली धोती के साथ रेशमी कुरता देने पर भी ऐसी चीज़

नहीं बनती बहुरिया। मानू दीदी काकी की सबसे छोटी बेटी है.. मानू दीदी का दूल्हा अफ़सर आदमी है।'

मंझली भाभी का मुंह लटक गया। मेरे चाची ने फुसफुसा कर कहा, किससे बात करती है बहू? मोहर छाप वाली धोती नहीं, मूंगिया लड्डू बेटी की विदाई के समय रोज मिठाई जो खाने को मिलेगी। देखती है न।'

दूसरे दिन चिक की पहली पांति में सात तारे जगमगा उठे, सात रंग के। सतभैया तारा! सिरचन जब काम में मगन होता है। तो उसकी जीभ ज़रा बाहर निकल आती है, होंठ पर अपने काम में मगन सिरचन को खाने-पीने की सुध नहीं रहती। चिक में सुतली के फंदे डाल कर अपने पास पड़े सूप पर निगाह डाली- चिउरा और गुड़ का एक सूखा ढेला। मैंने लक्ष्य किया, सिरचन की नाक के पास दी रेखाएं उभर आईं। मैं दौड़ कर माँ के पास गया। 'माँ, आज सिरचन को कलेवा किसने दिया है, सिर्फ चिउरा और गुड़?'

माँ रसोईघर में अंदर पकवान आदि बनाने में व्यस्त थी। बोली, मैं अकेली कहाँ-कहाँ क्या-क्या देखूँ.. अरी मंझली, सिरचन को बुंदिया क्यों नहीं देती?"

बुंदिया मैं नहीं खाता, काकी! सिरचन के मुँह में चिउरा भरा हुआ था। गुड़ का ढेला सूप के किनारे पर पड़ा रहा, अछूता।

माँ की बोली सुनते ही मंझली भाभी की भौंहें तन गईं। मुट्ठी भर बुंदिया सूप में फेंक कर चली गई।

सिरचन ने पानी पी कर कहा, मंझली बहूरानी अपने मैके से आई हुई मिठाई भी इसी तरह हाथ खोल कर बांटती है क्या?'

बस, मंझली भाभी अपने कमरे में बैठकर रोने लगी। चाची ने माँ के पास जा कर लगाया, छोटी जाति के आदमी का मुंह भी छोटा होता है। मुंह लगाने से सर पर चढ़ेगा ही... किसी के नैहर ससुराल की बात क्यों करेगा वह?'

मंझली भाभी माँ की दुलारी बहू है। माँ तमक कर बाहर आई, सिरचन, तुम काम करने आए हो, अपना काम करो। बहुओं से बतकुट्टी करने की क्या ज़रूरत? जिस चीज़ की ज़रूरत हो, मुझसे कहो।'

सिरचन का मुँह लाल हो गया। उसने कोई जवाब नहीं दिया। बाँस में टँगे हुए अधूरे चिक में फंदे डालने लगा।

मानू पान सजा कर बाहर बैठकखाने में भेज रही थी। चुपके से पान का एक बीड़ा सिरचन को देती हुई बोली और इधर-उधर देख कर कहा, सिरचन दादा, काम-काज का घर! पांच तरह के लोग पांच किस्म की बात करेंगे। तुम किसी की बात पर कान मत दो।'

सिरचन ने मुस्कुरा कर पान का बीड़ा मुंह में ले लिया। चाची अपने कमरे से निकल रही थी। सिरचन को पान खाते देख कर अवाक हो गई। सिरचन ने चाची को अपनी ओर अचरज से घूरते देख कर कहा, छोटी चाची, ज़रा अपनी डिबिया का गमकोआ जर्दा तो खिलाना बहुत दिन हुए....'

चाची कई कारणों से जली-भुनी रहती थी, सिरचन से। गुस्सा उतारने का ऐसा मौक़ा फिर नहीं मिल सकता। झनकती हुई बोली, मसखरी करता है? तुम्हारी चढ़ी हुई जीभ में आग लगे। घर में भी पान और गमकौआ जर्दा खाते हो?... चटोर कहीं के!

मेरा कलेजा धड़क उठा... यत्परो नास्ति!

बस, सिरचन की उंगलियों में सुतली के फंदे पड़ गए। मानो, कुछ देर तक वह चुपचाप बैठा पान को मुँह में घुलाता रहा। फिर अचानक उठ कर पिछवाड़े पीक थूक आया। अपनी छुरी, हँसियाँ वगैरह समेट संभाल कर झोले में रखे। टंगी हुई। अधूरी चिक पर एक निगाह डाली और हनहनाता हुआ आंगन के बाहर निकल गया।

चाची बड़बड़ाई, अरे बाप रे बाप! इतनी तेजी! कोई मुफ्त में तो काम नहीं करता। आठ रुपए में मोहरछाप वाली धोती आती है... इस मुँहझौंसे के मुंह में लगाम है, न आंख में शील। पैसा खर्च करने पर सैकड़ों चिक मिलेंगी। बांतर टोली की औरतें सिर पर गट्ठर ले कर गली गली मारी फिरती हैं।'

मानू कुछ नहीं बोली, चुपचाप अधूरी चिक को देखती रही... सातो तारे मंद पड़ गए।

माँ बोली जाने दे बेटी जी छोटा मत कर, मानू, मेले से खरीद कर भेज दूँगी।'

मानू को याद आया, विवाह में सिरचन के हाथ की शीतलपाटी दी थी माँ ने ससुरालवालों ने न जाने कितनी बार

खोल कर दिखलाया था पटना और कलकत्ता के मेहमानों को। वह उठ कर बड़ी भाभी के कमरे में चली गई।

मैं सिरचन को मनाने गया। देखा, एक फटी शीतलपाटी पर लेट कर वह कुछ सोच रहा है।

मुझे देखते ही बोला, बबुआ जी! अब नहीं। कान पकड़ता हूँ, अब नहीं... मोहर छाप वाली धोती ले कर क्या करूंगा? कौन पहनेगा?... ससुरी खुद मरी, बेटे बेटियों को ले गई अपने साथ। बबुआजी, मेरी घरवाली जिंदा रहती तो में ऐसी दुर्दशा भोगता? यह शीतलपाटी उसी की बुनी हुई है। इस शीतलपाटी को छू कर कहता हूँ, अब यह काम नहीं करूँगा... गांवभर में तुम्हारी हवेली में मेरी कदर होती थी.. अब क्या?' मैं चुपचाप वापस लौट आया। समझ गया, कलाकार के दिल में ठेस लगी है। वह अब नहीं आ सकता।

बड़ी भाभी अधूरी चिक में रंगीन छींट की झालर लगाने लगी, यह भी बेजा नहीं दिखलाई पड़ता, क्यों मानू?"

मानू कुछ नहीं बोली.. बेचारी! किंतु मैं चुप नहीं रह सका, चाची और मंझली भाभी की नज़र न लग जाए इसमें भी। मानू को ससुराल पहुंचाने में ही जा रहा था।

स्टेशन पर सामान मिलाते समय देखा, मानू बड़े जतन से अधूरे चिक को मोड़ कर लिए जा रही है अपने साथ मन-ही-मन सिरचन पर गुस्सा हो आया। चाची के सुर-में-सुर मिला कर कोसने को जी हुआ... कामचोर, चटोर...!

गाड़ी आई। सामान चढ़ा कर मैं दरवाज़ा बंद कर रहा था कि प्लेटफॉर्म पर दौड़ते हुए सिरचन पर नज़र पड़ी, बबुआजी!" उसने दरवाज़े के पास आ कर पुकारा।

'क्या है?' मैंने खिड़की से गर्दन निकाल कर झिड़की के स्वर में कहा। सिरचन ने पीठ पर लादे हुए बोझ को उतार कर मेरी ओर देखा, दौड़ता आया हूँ... दरवाजा खोलिए। मानू दीदी कहां हैं? एक बार देखूं!'

मैंने दरवाज़ा खोल दिया।

'सिरचन दादा!' मानू इतना ही बोल सकी।

खिड़की के पास खड़े हो कर सिरचन ने हकलाते हुए कहा, यह मेरी ओर से है। सब चीज़ है दीदी! शीतलपाटी, चिक और एक जोड़ी आसनी, कुश की।'

गाड़ी चल पड़ी।

मानू मोहर छापवाली धोती का दाम निकाल कर देने लगी। सिरचन ने जीभ को दांत से काट कर दोनों हाथ जोड़ दिए।

मानू फूट-फूट रो रही थी। में बंडल को खोल कर देखने लगा- ऐसी कारीगरी, ऐसी बारीक़ी, रंगीन सुतलियों के फंदों का ऐसा काम, पहली बार देख रहा था।

~@~

4. जानवर और जानवर

लेखक: मोहन राकेश

लेखक परिचय:-

जन्म:- मोहन राकेश का जन्म 8 जनवरी, 1925 को अमृतसर, पंजाब में हुआ था। उनके पिता पेशे से वकील थे और साथ ही साहित्य और संगीत के प्रेमी भी थे। पिता की साहित्यिक रुचि का प्रभाव मोहन राकेश पर भी पड़ा।

कथा साहित्य:- मोहन राकेश पहले कहानी विधा के ज़रिये हिन्दी में आए। उनकी मिसपाल, आद्रा, ग्लासटैंक, जानवर और मलबे का मालिक आदि कहानियों ने हिन्दी कहानी का परिदृश्य ही बदल दिया। वे 'नयी कहानी आन्दोलन' के शीर्ष कथाकार के रूप में चर्चित हुए। मोहन राकेश हिन्दी के बहुमुखी प्रतिभा संपन्न नाट्य लेखक और उपन्यासकार हैं। उनकी कहानियों में एक निरंतर विकास मिलता है, जिससे वे आधुनिक मनुष्य की नियति के निकट से निकटतर आते गए हैं। उनकी खूबी यह थी कि वे कथा-शिल्प के उस्ताद थे और उनकी भाषा में गज़ब का सधाव ही नहीं, एक शास्त्रीय अनुशासन भी है। कहानी से लेकर उपन्यास तक में उनकी कथा-भूमि शहरी मध्य वर्ग है। कुछ कहानियों में भारत-विभाजन की पीड़ा बहुत सशक्त रूप में अभिव्यक्त हुई है। कहानी के बाद राकेश को सफलता नाट्य-लेखन के क्षेत्र में मिली है।

***

स्कूल की नयी मेट्रन का नाम अनिता मुकर्जी था और उसकी आँखें बहुत अच्छी थीं। पर वह आंट सैली की जगह आयी थी, इसलिए पहले दिन बैचलर्स डाइनिंग-रूम में किसी ने उससे खुलकर बात नहीं की।

उसने जॉन से बात करने की कोशिश की, तो वह 'हूँ-हाँ' में उत्तर देकर टालता रहा। मणि नानावती को वह अपनी चायदानी में से चाय देने लगी, तो उसने हल्का-सा धन्यवाद देकर मना कर दिया। पीटर ने अपना चेहरा ऐसे गम्भीर बनाए रखा जैसे उसे बात करने की आदत ही न हो। किसी तरफ़ से लि$फ्ट न मिलने पर वह भी चुप हो गयी और जल्दी से खाना खाकर उठ गयी।

"अब मेरी समझ में आ रहा है कि पादरी ने सैली को क्यों निकाल दिया," वह चली गयी, तो जॉन ने अपनी भूरी आँखें पीटर के चेहरे पर स्थिर किये हुए कहा।

पीटर की आँखें नानावती से मिल गयीं। नानावती दूसरी तरफ़ देखने लगी।

वैसे उनमें से कोई नहीं जानता था कि आंट सैली को फादर फिशर ने क्यों निकाल दिया। उसके जाने के दिन से ही जॉन मुँह ही मुँह बड़बड़ाकर अपना असन्तोष प्रकट करता रहता था।पीटर भी उसके साथ दबे-दबे कुढ़ लेता था।

"चलकर एक दिन सब लोग पादरी से बात क्यों नहीं करते?" एक बार हकीम ने तेज़ होकर कहा।

जॉन ने पीटर को आँख मारी और वे दोनों चुप रहे। दूसरे दिन सुबह पादरी के सिर-दर्द की ख़बर पाकर हक़ीम

उसकी मिज़ाजपुर्सी के लिए गया तो जॉन पीटर से बोला, "ए, देखा? पहुँच गया न उसके तलुवे सूँघने? सन ऑवं ए गन! हमें उल्लू बनाता था।"

आंट सैली के चले जाने से बैचलर्स डाइनिंग-रूम का वातावरण बहुत रूखा-सा हो गया। आंट सैली के रहते वहाँ के वातावरण में बहुत घरेलूपन-सा रहता था। सरदी में तो ख़ास तौर से आंटी के बीच आ बैठने से वह कमरा एक परिवार का भरा-पूरा घर-सा बन जाता था। वह अपनी कमर पर हाथ रखे बाहर से ही मज़ाक करती आती–

"पीटर के लिए आज मगज़ का शोरबा बना है, या वह मेरा ही मगज़ खाएगा?"

या–

"...हो हो हो! मुझे नहीं पता था कि आज मणि इस तरह गज़ब ढा रही है। नहीं तो मैं भी ज़रा सज-सँवरकर आती।" ऐसे मौके पर पाल उसके सफ़ेद बालों पर बँधे लाल या नीले फीते की तरफ़ संकेत करके कहता, "आंटी, यह फीता बाँधकर तो तुम बिलकुल दुलहिन जैसी लगती हो!"

"अच्छा, दुलहिन जैसी लगती हूँ? तो कौन करेगा मुझसे शादी? तुम करोगे!" और उसकी आँखें मिच जातीं, होंठ फैल जाते और गले से छलछलाती हँसी का स्वर सुनाई देता।

एक बार पीटर ने कहा, "आंटी, पाल कह रहा था कि वह आजकल में तुमसे ब्याह का प्रस्ताव करनेवाला है।"

आंटी ने चेहरा ज़रा तिरछा करके आँखें पीटर के चेहरे पर स्थिर किये हुए उत्तर दिया, "तो मुझे और क्या चाहिए? मुझे एक साथ पति भी मिल जाएगा और बेटा भी।"

फिर वही हँसी, जैसे बहते पानी के वेग में छोटे-छोटे पत्थर फिसलते चले जाएँ।

आंट सैली के चले जाने से अकेले लोगों का वह परिवार काफ़ी उखड़ गया था। कुछ दिन पहले इसी तरह मीराशी चला गया था। उसके बाद पाल की छुट्टी कर दी गयी थी। मीराशी तो ख़ैर बिगड़ैल आदमी था, मगर पाल को बैचलर्स डाइनिंग-रूम के बैचलर्स–जिनमें दो स्त्रियाँ भी सम्मिलित थीं–बहुत चाहते थे। हालाँकि जॉन को पाल का अँग्रेज़ी फ़िल्मों के बटलर की तरह अकडक़र चलना पसन्द नहीं था और उन दोनों में प्राय: आपस में झड़प हो जाती थी, फिर भी उसकी पीठ पीछे वह उसकी तारीफ़ ही करता था। जिस दिन पाल गया, उस दिन जॉन खिड़की के पास बैठा सिर हिलाकर पीटर से कहता रहा, "अच्छा हुआ जो यह लडक़ा यहाँ से चला गया। अभी तो यह बाहर जाकर कुछ बन भी जाएगा, वरना यहाँ रहकर इसका क्या बनना था? तुम भी जवान आदमी हो, तुम यहाँ किसलिए पड़े हो?"

और पीटर घड़ी को चाबी देता हुआ चुपचाप दीवार की तरफ़ देखता रहा।

पाल और मीराशी के निकाले जाने की वजह का तो ख़ैर सबको पता था। मीराशी का अपराध बिलकुल सीधा था। उसने फादर फिशर के माली को पीट दिया था। पाल

का अपराध दूसरी तरह का था। उसने आवारा नस्ल का एक हिन्दुस्तानी कुत्ता पाल लिया था जिसे वह हर समय अपने साथ रखता था। हालाँकि कुत्ते में कोई ख़ासियत नहीं थी–बहुत सादा-सी सूरत, फीका बादामी रंग और लम्बूतरा-सा उसका क़द था–फिर भी क्योंकि पाल ने उसे पाल लिया था, इसलिए वह उसे बहुत लाड़ से रखता था। उसका नाम उसने 'बेबी' रख रखा था और कई बार उसे बगल में लिये खाना खाने आ जाता था। जल्दी ही बेबी बैचलर्स डाइनिंग-रूम में खाना खानेवाले सब लोगों का बेबी बन गया–एक मणि नानावती को छोडक़र जो उसकी सूरत देखते ही घबरा जाती थी। घबराहट में उसके चेहरे का रंग सुर्ख़ हो जाता और उसका नाटा छरहरा शरीर काबू में न रहता। एक बार बेबी उसके हाथ में हड्डी देखकर उसके घुटने पर चढऩे की कोशिश करने लगा तो वह घबराकर कुरसी पर खड़ी हो गयी और दोनों हाथ हवा में झटकती हुई चिल्लाने लगी, "ओई ओई हिश्, गो अवे! प्लीज़ पाल, टेक हिम अवे! प्लीज़...!"

पाल पुलाव का चम्मच मुँह के पास रोककर धूर्तता के साथ मुस्कराया और बेबी को डाँटकर बोला, "चल इधर बेबी! इस तरह ख़ानदान को बदनाम करता है?"

मगर बेबी को हड्डी का कुछ ऐसा शौक था कि वह डाँट सुनकर भी नहीं हटा। वह नानावती की कुरसी पर चढक़र उसके जिस्म के सहारे खड़ा होने की कोशिश करने लगा। इस जद्दोज़हद में नानावती कुरसी से गिरने ही जा रही

थी कि पाल ने जल्दी से उठकर उसे बगल से पकडक़र नीचे उतार दिया। फिर उसने बेबी को दो चपत लगायीं और उसे कान से खींचता हुआ अपनी सीट के पास ले आया। बेबी पाल की टाँगों के आसपास मँडराने लगा।

"मेरा सारा बलाउज़ ख़राब कर दिया!" नानावती हाँफती हुई रूमाल से अपना ब्लाउज़ साफ़ करने लगी। उसके उभार पर एकाध जगह बेबी का मुँह छू गया था।

बेबी अब पाल के घुटने से अपनी नाक रगड़ रहा था। पाल ने उसकी पीठ सहलाते हुए कहा, "नॉटी चाइल्ड! ऐसी भी क्या शरारत कि इन्सान एटिकेट तक भूल जाए!"

जॉन पीटर की तरफ़ देखकर मुस्कराया। नानावती भडक़ उठी, "देखो पाल, मुझे इस तरह का मज़ाक कतई पसन्द नहीं।" गुस्से से उसका पूरा शरीर तमतमा गया था। अगर वह और शब्द बोलती तो साथ रो देती।

मगर उसे गम्भीर देखकर भी पाल गम्भीर नहीं हुआ। बोला, "मुझे खुद ऐसा मज़ाक पसन्द नहीं, मादाम! मैं इसकी हरकत के लिए बहुत शर्मिन्दा हूँ!" और उसके निचले होंठ पर हल्की-सी मुस्कराहट आ गयी।

नानावती क्षण-भर रुँधे हुए आवेश के साथ पाल को देखती रही। फिर अपना नेपकिन मेज़ पर पटककर तेज़ी से कमरे से चली गयी। उसके जाते ही जॉन ने अपनी भूरी आँखें फैलाकर सिर हिलाया और कहा, "आज तुम्हारे साथ कुछ न कुछ होकर रहेगा। वह अब सीधी उस शुतुरमुर्ग के पास शिकायत करने जाएगी...कुतिया!"

मगर नानावती ने कोई शिकायत नहीं की। बल्कि दूसरे दिन सुबह उसने पाल से अपने व्यवहार के लिए क्षमा माँग ली। जॉन को अपनी भविष्यवाणी के ग़लत निकलने का खेद तो हुआ, पर इससे नानावती के प्रति उसका व्यवहार पहले से बदल गया। उसने उसकी अनुपस्थिति में उसके लिए वेश्यावाचक शब्दों का प्रयोग बन्द कर दिया। यहाँ तक कि एक दिन वह एटकिन्सन के साथ इस सम्बन्ध में विचार करता रहा कि इतनी अच्छी और मेहनती लडक़ी को उसके पति ने घर से क्यों निकाल रखा है।

नानावती ने भी उसके बाद बेबी को देखते ही 'ओई ओई हिश्' करना बन्द कर दिया। गाहे-बगाहे वह उसे देखकर मुस्करा भी देती। एक बार तो उसने बेबी की पीठ पर हाथ भी फेर दिया, हालाँकि ऐसा करते हुए वह सिर से पाँव तक सिहर गयी।

बैचलर्स डाइनिंग-रूम में पाल के ज़ोर-ज़ोर के कहकहे रात को दूर तक सुनाई देते। बेबी को लेकर नानावती से तरह-तरह के मज़ाक किये जाते। मज़ाक सुनकर जॉन की भूरी आँखों में चमक आ जाती और वह सिर हिलाता हुआ मुस्कराता रहता।

मगर एक दिन सुबह बैचलर्स डाइनिंग-रूम में सुना गया कि रात को फादर फिशर ने बेबी को गोली मार दी है। जॉन अपनी चुँधियाई आँखों को मेज़ पर स्थिर किये चुपचाप आमलेट खाता रहा। नानावती का छुरी वाला हाथ ज़रा-ज़रा काँपने लगा। एक बार सहमी नज़र से जॉन और पीटर को

देखकर वह अपनी नज़रें प्लेट पर गड़ाए रही। पीटर स्लाइस का टुकड़ा काटने में इस तरह व्यस्त हो रहा जैसे बहुत महत्त्वपूर्ण काम कर रहा हो।

"पाल अभी नहीं आया, ए?" जॉन ने किरपू से पूछा। किरपू ने नमकदानी पीटर के पास से हटाकर जॉन के सामने रख दी।

"नहीं।"

"वह आज आएगा? हि:" जॉन ने आमलेट का बड़ा-सा टुकड़ा काटकर मुँह में भर लिया।

"बेज़बान जानवर को इस तरह मारने से...मैं कहता हूँ...मैं कहता हूँ...," आमलेट जॉन के गले में अटक गया। किरपू चटनी की बोतल रखने के बहाने जॉन के कान के पास फुसफुसाया, "पादरी आ रहा है!"

सबकी नज़रें प्लेटों पर जम गयीं। पादरी लबादा पहने, बाइबल लिये, गिरजे की तरफ़ जा रहा था। वह खिड़की के पास से गुज़रा तो तीनों अपनी-अपनी कुरसी से आधा-आधा उठ गये।

"गुड मार्निंग, फादर!"

"गुड मार्निंग माई सन्ज़!"

"आज अच्छा सुहाना दिन है!"

"परमात्मा का शुक्र करना चाहिए।"

पादरी खट्टी की बाड़ से आगे निकल गया, तो जॉन बोला, "यह अपने को पादरी कहता है! सवेरे परमात्मा से

संसार-भर का चरित्र सुधारने के लिए प्रार्थना करेगा और रात को...हरामज़ादा!"

नानावती सिहर गयी।

"ऐसी गाली नहीं देनी चाहिए," वह दबे हुए और शंकित स्वर में बोली।

"तुम इसे गाली कहती हो?" जॉन आवेश के साथ बोला, "मैं कहता हूँ इसमें ज़रा भी गाली नहीं है। तुम्हें इसकी करतूतों का पता नहीं है? यह पादरी है?"

नानावती का चेहरा फीका पड़ गया। उसने शंकित नज़र से इधर-उधर देखा, पर चुप रही। जॉन के चौड़े माथे पर कई लकीरें खिंच गयी थीं। वह बोतल से इस तरह चटनी उँडेलने लगा, जैसे उसी पर अपना सारा गुस्सा निकाल लेना चाहता हो।

पीटर सारा समय खिड़की से बाहर देखता रहा।

डिंग-डांग! डिंग-डांग! गिरजे की घंटियाँ बजने लगीं। नानावती जल्दी से नेपकिन से मुँह पोंछकर उठ खड़ी हुई और पल-भर दुविधा में रहकर बाहर चली गयी।

"चुहिया! कितना डरती है, ए?" जॉन बोला।

मिसेज़ मर्फी एटकिन्सन के साथ बात करती हुई खिड़की के पास से निकलकर चली गयी। गिरजे की घंटियाँ लगातार बज रही थीं–डिंग-डांग! डिंग-डांग! डिंग-डांग!

जॉन जल्दी-जल्दी चाय के घूँट भरने लगा। जल्दी में चाय की कुछ बूँदें उसके गाउन पर गिर गयीं।

"गाश्!" वह प्याली रखकर रूमाल से गाउन साफ़ करने लगा।

"गिरजे नहीं चल रहे?" पीटर ने उठते हुए पूछा।

जॉन ने जल्दी-जल्दी दो-तीन घूँट भरे और बाकी चाय छोडक़र उठ खड़ा हुआ। उनके दरवाज़े से बाहर निकलते ही किरपू और ईसरसिंह में बचे हुए मक्खन के लिए छीना-झपटी होने लगी, जिसमें एक प्याली गिरकर टूट गयी। हकीम और बैरों को आते देखकर ईसरसिंह जल्दी से पैंटी में चला गया और किरपू कपड़े से मेज़ साफ़ करने लगा।

हक़ीम कन्धे झुकाकर चलता हुआ बैरो को रात की घटना सुना रहा था। डाइनिंग-रूम के पास आकर उसका स्वर और धीमा हो गया, "यू सी, बेबी को डॉली के साथ देखते ही पादरी को एकदम गुस्सा आ गया और वह अन्दर जाकर अपनी राइफल निकाल लाया। एक ही फायर में उसने उसे चित कर दिया। डॉली कुछ देर बिटर-बिटर पादरी को देखती रही। फिर बाड़ के पीछे भाग गयी। बाद में सुना है पादरी ने उसे गरम पानी से नहलवाया और डॉक्टर को बुलाकर उसे इंजेक्शन भी लगवाए...!"

"कहाँ पादरी की बिस्कुट और सैंडविच खाकर पली हुई कुतिया और कहाँ बेचारा बेबी!" बैरो मुस्कराया।

"मगर उस बेचारे को क्या पता था?"

वे दोनों हँस दिये।

"बेबी को मालूम होता कि यह कुतिया कैनेडा से आयी है और इसकी कीमत तीन सौ रुपया है, तो शायद वह...।"

और वे दोनों फिर हँस दिये।

"यह तो था कि कल पादरी ने देख लिया, पर इससे पहले अगर...!"

"बैरो ने हक़ीम को आँख मारी। वह चुप कर गया। बाड़ के मोड़ के पास जॉन और पीटर खड़े थे। पीटर अपने जूते का फीता फिर से बाँध रहा था।

"गुड मार्निंग, पीटर!"

"गुड मार्निंग, बैरो।"

"आज बहुत चुस्त लग रहे हो। बाल आज ही कटाए हैं?"

"नहीं, दो-तीन दिन हो गये।"

"बहुत अच्छे कटे हैं।"

"शुक्रिया!"

सहसा डिंग-डांग की आवाज़ रुक गयी। वे सब तेज़ी से गिरजे के अन्दर चले गये।

पन्द्रहवाँ साम गाने के बाद प्रार्थना शुरू हुई। सब लोग घुटनों के बल होकर आँखों पर हाथ रखे पादरी के साथ-साथ बोलने लगे–

"...अवर फादर, हू आर्ट इन हैवन, हैलोड बी दाई नेम, दाई किंगडम कम, दाई विल वी डन, इन दिस वर्ल्ड एज़ इन हैवन..."

बैरो ने प्रार्थना करते हुए बीच में अपनी बीवी के कान के पास फुसफुसाकर कहा, "मेरी, तुम्हारा पेटीकोट नीचे से दिखाई दे रहा है।"

मेरी एक हाथ आँखों पर रखे दूसरे हाथ से अपना स्कर्ट नीचे सरकाने लगी।

"...नाउ एंड फॉर एवर मोर, आमेन।"

गिरजे में उस दिन और उससे अगले दिन पाल की सीट खाली रही। इस बात को नोट हर एक ने किया, मगर किसी ने इस बारे में दूसरे से बात नहीं की। पाल ईसाई नहीं था, मगर फादर फिशर के आदेश के मुताबिक स्टाफ के हर आदमी का गिरजे में उपस्थित होना अनिवार्य था–जो ईसाई नहीं थे, उनका रोज़ आना और भी ज़रूरी था। पादरी गिरजे से निकलता हुआ उन लोगों की सीटों पर एक नज़र ज़रूर डाल लेता था। तीसरे दिन भी पाल अपनी सीट पर दिखाई नहीं दिया, तो पादरी गिरजे से निकलकर सीधा स्टाफ-रूम में पहुँच गया। वहाँ पाल एक कोने में मेज़ के पास खड़ा कोई मैगजीन देख रहा था। पादरी पास पहुँच गया, तो भी उसकी तनी हुई गरदन में खम नहीं आया।

"गुड मार्निंग पादरी!" वह क्षण-भर के लिए आँख उठाकर फिर मैगज़ीन देखने लगा।

"तुम तीन दिन से गिरजे में नहीं आये," उत्तेजना में पादरी का हाथ पीठ के पीछे चला गया। वह बहुत कठिनाई से अपने स्वर को वश में रख पाया था।

"जी हाँ, मैं तीन दिन से नहीं आया," मैगज़ीन नीचे करके पाल ने गम्भीर नज़र से पादरी की तरफ़ देख लिया।

"मैं वज़ह जान सकता हूँ?"

"वज़ह कुछ भी नहीं है।"

पादरी ने उत्तेजना के मारे बाइबल को दोनों हाथों में भींच लिया और त्योरी को डालकर कहा, "तुम जानते हो कि जो अच्छा-भला होकर भी सुबह गिरजे में नहीं आता उसे यहाँ रहने का अधिकार नहीं है?"

गुस्से के मारे पाल के जबड़ों के माँस में खिंचाव आ गया था। उसने मैगज़ीन मेज़ पर रखकर हाथ जेबों में डाल लिये और बिलकुल सीधा खड़ा हो गया। बड़ी खिड़की के पास जॉन नज़र झुकाए बैठा था और आठ-दस लोग नोटिस बोर्ड और चिट्ठियों वाले रैक के पास खड़े अपने को किसी न किसी तरह उदासीन ज़ाहिर करने की कोशिश कर रहे थे। उनमें से किसी ने पाल के साथ आँख नहीं मिलाई। पाल का गला ऐसे काँप गया जैसे वह कोई बहुत सख़्त बात कहने जा रहा हो।

"पादरी, हम गिरजे में जो प्रार्थना करते हैं, उसका कोई मतलब भी होता है?"

एक लकीर दूर तक खिंचती चली गयी। पादरी का चेहरा गुस्से से स्याह हो गया।

"तुम्हारा कहने का मतलब है..." उसके दाँत भिंच गये और वाक्य उससे पूरा नहीं हुआ। नोटिस बोर्ड के पास खड़े लोगों के चेहरे फक पड़ गये।

"मेरा मतलब है पादरी, कि रात को तो हम ग़रीब जानवरों को गोली मारते हैं, और सुबह गिरजे में उनकी रक्षा के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं–इसका कुछ मतलब निकलता है?"

पादरी पल-भर ख़ून-भरी आँखों से पाल को देखता रहा। उसकी साँस तेज़ हो गयी थी।

"मतलब निकलता है और वह यह कि हर जानवर एक-सा नहीं होता। जानवर और जानवर में फर्क़ होता है," उसने दाँत भींचकर कहा और पास के दरवाज़े से बाहर चला गया–हालाँकि उसके घर का रास्ता दूसरे दरवाज़े से था।

पन्द्रह मिनट बाद स्कूल का क्लर्क आकर पाल को चिट्ठी दे गया कि उसे उस दिन से नौकरी से बरख़ास्त कर दिया गया है। वह चौबीस घंटे के अन्दर अपना क्वार्टर ख़ाली करके चला जाए।

"यह पादरी नहीं, राक्षस है," जॉन मुँह में बड़बड़ाया।

पीटर को उस दिन शहर में काम निकल आया, इसलिए वह रात को देर से लौटा। हक़ीम और बैरो खेल के मैदानों की जाँच में व्यस्त रहे। नानावती को हल्का-सा बुख़ार हो आया। पाल को चलते वक़्त सिर्फ़ जॉन ही अपने कमरे में मिला। वह अपनी खिड़की में रखे गमलों को ठीक कर रहा था।

"जा रहे हो?" उसने पाल से पूछा।

"हाँ, तुमसे गुड बाई कहने आया हूँ।"

जॉन गमलों को छोडक़र अपनी चारपाई पर जा बैठा।

"मैं जवान होता, तो मैं भी तुम्हारे साथ चला चलता," उसने कहा, "मगर मुझे यहाँ से निकलकर पता नहीं क़ब्र की राह भी मिलेगी या नहीं। मेरी हड्डियों में दम-खम होता, तो तुम देखते..."

पाल ने मुस्कराकर उसका हाथ दबाया और उसके पास से चल दिया।

"विश यू बेस्ट ऑफ लक।"

"थैंक यू।"

पाल के चले जाने के बाद आंट सैली ने बैचलर्स डाइनिंग-रूम में आना बन्द कर दिया और कई दिन खाना अपने क्वार्टर में ही मँगवाती रही। जॉन और पीटर भी अलग-अलग वक़्त पर आते, जिससे बहुत कम उनमें मुलाक़ात हो पाती। नानावती अब पहले से भी सहमी हुई आती और जल्दी-जल्दी खाना खाकर उठ जाती। फादर फिशर ने उसे पाल वाला क्वार्टर दे दिया था। इसलिए वह अपने को अपराधिनी-सी महसूस करती थी। जॉन ने उसके बारे में अपनी राय फिर बदल ली थी।

मगर धीरे-धीरे स्थिति फिर पुरानी सतह पर आने लगी थी। बैचलर्स डाइनिंग-रूम में फिर कहकहे और बहस-मुबाहिसे सुनाई देने लगे थे जब एक रात सुना गया कि आंट सैली को भी नोटिस मिल गया है।

"सैली को?" जॉन के होंठ खुले रह गये, "किस बात पर?"

"बात का पता नहीं है," पीटर सूप में चम्मच चलाता रहा।

जॉन का चेहरा गम्भीर हो गया। वह मक्खन की टिकिया खोलता हुआ बोला, "मुझे लगता है कि इसके बाद अब मेरी बारी आएगी। मुझे पता है कि उसकी आँखों में कौन-कौन खटकता है। सैली का कसूर यह था कि वह रोज़ उसकी हाज़िरी नहीं देती थी और न ही वह..." और वह

नानावती की तरफ़ देखकर चुप रह गया। पीटर कुछ कहने को हुआ, मगर बाहर से हक़ीम को आते देखकर चुपचाप नेपकिन से होंठ पोंछने लगा।

हक़ीम के आने पर कई क्षण चुप्पी छाई रही। किरपू हक़ीम के सामने प्लेट और छुरी-काँटे रख गया।

"तुम्हारे क्वार्टर में नये पर्दे बहुत अच्छे लगे हैं," जॉन हक़ीम से बोला।

"तुम्हें पसन्द हैं?"

"बहुत।"

"शुक्रिया!"

"मेरा ख़्याल है चॉप्स में नमक ज़्यादा है।"

"अच्छा?"

"लेकिन पुडिंग अच्छा है।"

खाना खाकर जॉन और पीटर लॉन में टहलते रहे। आंट सैली के क्वार्टर को जानेवाले मोड़ के पास रुककर जॉन ने पूछा, "सैली से मिलने चलोगे?"

"चलो।"

"उस हरामी ने हमें इस वक़्त जाते देख लिया तो...।"

"तो कल सुबह न चलें?"

"हाँ, इस वक़्त देर भी हो गयी है।"

"बेचारी सैली!"

"इस पादरी जैसा ज़ालिम आदमी मैंने आज तक नहीं देखा। फौज में बड़े-बड़े सख़्त अफ़सर थे, मगर ऐसा आदमी कोई नहीं था।"

पीटर जंगले के पास घास पर बैठ गया।

"मुझे फिर से फौज की ज़िन्दगी मिल जाए तो मैं एक दिन भी यहाँ न रहूँ...।"

घास पर बैठकर जॉन पीटर को अपनी फौज की ज़िन्दगी के वही किस्से सुनाने लगा जो वह पहले भी कई बार सुना चुका था।

"पूरी-पूरी बोतल, ए! रोज़ रात को रम की एक पूरी बोतल मैं पी जाता था। मेरा एक साथी था जो पास के गाँव से दो-दो लड़कियों को ले आया करता था।...कभी-कभी हम रात को निकलकर उसके गाँव चले जाते थे। अफ़सर लोग देखते थे मगर कुछ कह नहीं सकते थे। वे ख़ुद भी तो यही कुछ करते थे। वह ज़िन्दगी थी। यह भी कोई ज़िन्दगी है, ए?" मगर पीटर उसकी बात न सुनकर बिना आवाज़ पैदा किए, मुँह ही मुँह एक गीत गुनगुना रहा था।

"वैसे दिन फिर से मिल जाएँ, तो कुछ नहीं चाहिए, ए?"

ऊपर देवदार की छतरियाँ हिल रही थीं। हवा से जंगल साँय-साँय कर रहा था। होस्टल की तरफ़ से आती पगडंडी पर पैरों की आवाज़ सुनकर जॉन थोड़ा चौंक गया।

"कोई आ रहा है, ए?"

पीटर सिर उठाकर जंगले से नीचे देखने लगा। पैरों की आहट के साथ सीटी की आवाज़ ऊपर आती गयी।

"बैरो है!"

"यह भी एक हरामज़ादा है।" पीटर ने उसका हाथ दबा दिया।

"अभी क्वार्टर में नहीं गये टैफी?" बैरो ने अँधेरे से निकलकर सामने आते हुए पूछा।

"नहीं, यहाँ बैठकर ज़रा हवा ले रहे हैं।"

"आज हवा काफ़ी ठंडी है। पन्द्रह-बीस दिन में बर्फ पडने लगेगी।" जॉन जंगले का सहारा लेकर उठ खड़ा हुआ।

"अच्छा, गुड नाइट पीटर! गुड नाइट बैरो!"

"गुड नाइट!"

कुछ रास्ता पीटर और बैरो साथ-साथ चलते रहे। बैरो चलते-चलते बोला, "जॉन अब काफी सठिया गया है, क्यों? इसे अब रिटायर हो जाना चाहिए।"

"हाँ-आँ!" पीटर के शरीर में एक सिहरन भर गयी।

"मगर यह तो यहीं अपनी क़ब्र बनाएगा, नहीं?"

पीटर ने मुँह तक आयी गाली होंठों में दबा ली।

बैरो का क्वार्टर आ गया।

"अच्छा, गुड नाइट!"

"गुड नाइट!"

सुबह नाश्ते के वक़्त जॉन ने पीटर से पूछा, "सैली चली गयी, ए?"

"पता नहीं पीटर बोला, "मेरा ख़याल है, अभी नहीं गयी।"

"वह आ रही है!" नानावती नेपकिन से मुँह पोंछकर उसे हाथ में मसलने लगी। जॉन और पीटर की आँखें झुक गयीं।

आंट सैली का रिक्शा डाइनिंग-रूम के दरवाज़े के पास आकर रुक गया। वह कन्धे पर झोला लटकाए उतरकर डाइनिंग-रूम में आ गयी।

"गुड मार्निंग एवरीबडी!" उसने दहलीज़ लाँघते ही हाथ हिलाया।

"गुड मार्निंग सैली!" जॉन ने भूरी आँखें उसके चेहरे पर स्थिर किये हुए भारी आवाज़ में कहा। जो वह मुँह से नहीं कह सका, वह उसने अपनी नज़र से कह देने की चेष्टा की।

"बस, आज ही जा रही हो।" नानावती ने डरे-सहमे हुए स्वर में पूछा और एक बार दायें-बायें देख लिया। आंट सैली ने आँखें झपकते हुए मुस्कराकर सिर हिला दिया।

"मैं सुबह मिलने आ रहा था," पीटर बोला, "मगर तैयार होने-होने में देर हो गयी। मेरा ख़याल था कि तुम शायद शाम को जा रही हो...।"

आंट सैली ने धीरे-से उसका कन्धा थपथपा दिया और उसी तरह मुस्कराते हुए कहा, "मैं जानती हूँ मेरे बच्चे! मैं चाहती हूँ कि तुम ख़ुश रहो।"

"आंट, कभी-कभार ख़त लिख दिया करना," पीटर ने उसका मुरझाया हुआ नरम हाथ अपने मज़बूत हाथ में लेकर हिलाया। आंट सैली की आँखें डबडबा आयीं और उसने उन पर रूमाल रख लिया।

"अच्छा, गुड बाई!" कहकर वह दहलीज़ पार करके रिक्शा की तरफ़ चली गयी।

"गुड बाई सैली!" जॉन ने पीछे से कहा।

"गुड बाई आंटी!"

"गुड बाई!"

आंट सैली ने रिक्शा में बैठकर उनकी तरफ़ हाथ हिलाया। मज़दूर रिक्शा खींचने लगे।

कुछ देर बाद नानावती ने कहा, "किरपू, एक बटर स्लाइस।"

जॉन पीछे की तरफ़ देखकर बोला, "मुझे चाय का थोड़ा गर्म पानी और दे दो।"

पीटर जैम के डिब्बे में से जैम निकालने लगा।

जिस दिन अनिता आयी, उसी शाम से आकाश में सलेटी बादल घिरने लगे। रात को हल्की-हल्की बरफ़ भी पड़ गयी। अगले दिन शाम तक बादल और गहरे हो गये। पीटर खेतानी गाँव तक घूमकर वापस आ रहा था, जब अनिता उसे ऊपर की पगडंडी पर टहलती दिखाई दे गयी। वह उस ठंड में भी साड़ी के ऊपर सिर्फ़ एक शाल लिये थी। पीटर को देखकर वह मुस्कराई। पीटर ने उसकी मुस्कराहट का उत्तर अभिवादन से दिया।

"घूमने जा रही हो?" उसने पूछा।

"नहीं, यूँ ही ज़रा टहलने के लिए निकल आयी थी।"

"तुम्हें ठंड नहीं लग रही है?"

"ठंड तो है ही, मगर क्वार्टर में बन्द होकर बैठने को मन नहीं हुआ।" उसने शाल से अपनी बाँहें भी ढाँप लीं।

"तुम तो ऐसे घूम रही हो जैसे मई का महीना हो।"

"मेरे लिए मई और नवम्बर दोनों बराबर हैं। मेरे पास ऊनी कपड़े हैं ही नहीं।" वह फिसलन पर से सँभलती हुई पगडंडी से उतरकर उसके पास आ गयी।

ऊनी कपड़े तो तुमने पादरी के डिनर की रात के लिए सँभालकर रख रखे होंगे। तब तक सरदी से बीमार न पड़ जाना।" पीटर ने मज़ाक के अन्दाज़ में अपना निचला होंठ सिकोड़ लिया।

"सच, मेरे पास इस शाल के सिवा और कोई ऊनी कपड़ा है ही नहीं," अनिता उसके साथ-साथ चलती हुई बोली, "सच पूछो तो यह भी प्रेज़ेंट का है। हमें उधर गरम कपड़ों की ज़रूरत ही नहीं पड़ती।"

"तो परसों तक एक बढिया़-सा कोट सिला लो। परसों फादर का डिनर है।"

"परसों तक?...ओह?" और वह मीठी-सी हँसी हँस दी।

"क्यों? एक दिन में यहाँ अच्छे से अच्छा कोट सिल जाएगा"

"मेरे पास इतने पैसे होते तो मैं यहाँ नौकरी करने ही क्यों आती? तुम्हें पता है, मैं नौ सौ मील से यहाँ आयी हूँ...अ..."

"पीटर–या सिर्फ़ विकी...।"

"मैं अपने घर में अकेली कमाने वाली हूँ। मेरी माँ पहले बटुए सिया करती थी, पर अब उसकी आँखें बहुत कमज़ोर

हो यगी हैं। मेरा छोटा भाई अभी पढ़ता है। उसके एम.एस-सी. करने तक मुझे नौकरी करनी है।"

पीटर ने रुककर एक सिगरेट सुलगा लिया। बरफ़ के हल्के-हल्के गाले पडऩे लगे थे। उसने आकाश की तरफ़ देखा। बादल बहुत गहरा था।

"आज काफ़ी बरफ़ पड़ेगी," उसने कोट के कॉलर ऊँचे उठाते हुए कहा। "चलो, तुम्हें तुम्हारे क्वार्टर तक छोड़ आऊँ।...तुम सी कॉटेज में हो न?"

"हाँ।...चलो मैं तुम्हें वहाँ चाय की प्याली बनाकर पिलाऊँगी।"

"इस मौसम में चाय मिल जाए, तो और क्या चाहिए?"

वे सी कॉटेज को जानेवाली पगडंडी पर उतरने लगे। कुहरा घना हो जाने से रास्ता दस क़दम से आगे दिखाई नहीं दे रहा था। अनिता एक जगह पत्थर से ठोकर खा गयी।

"चोट लगी?"

"नहीं।"

"मेरे कन्धे का सहारा ले लो।"

अनिता ने बराबर आकर उसके कन्धे का सहारा ले लिया। जब वे सी कॉटेज के बरामदे में पहुँचे, तो बरफ़ के बड़े-बड़े गाले गिरने लगे थे। घाटी में जहाँ तक आँख जाती थी, बादल ही बादल भरा था। एक बिल्ली दरवाज़े से सटकर काँप रही थी। अनिता ने दरवाज़ा खोला, तो वह म्याऊँ करके अन्दर घुस गयी।

दरवाज़ा खुलने पर पीटर ने उसके सामान पर एक सरसरी नज़र डाली। स्कूल के फर्नीचर के अलावा उसे एक टीन का ट्रंक और दो-चार कपड़े ही दिखाई दिये। मेज़ पर एक सस्ता टेबल लैम्प रखा था और उसके पास ही एक युवक का फोटोग्राफ था। पीटर चारपाई पर बैठ गया। अनिता स्टोव जलाने लगी।

चारपाई पर एक पुस्तक और आधा लिखा पत्र पड़ा था। पीटर ने पत्र ज़रा हटाकर रख दिया और पुस्तक उठा ली। पुस्तक पत्र-लेखन के सम्बन्ध में थी और उसमें हर तरह के पत्र दिये हुए थे। पीटर उसके पन्ने उलटने लगा।

अनिता ने स्टोव जलाकर केतली चढ़ा दी। फिर उसने बाहर देखकर कहा, "बरफ़ पहले से तेज़ पडऩे लगी है।"

पीटर ने देखा कि बरामदे के बाहर ज़मीन पर सफ़ेदी की हल्की तह बिछ गयी है। उसने सिगरेट का टुकड़ा बाहर फेंका, तो वह धुन्ध में जाते ही बुझ गया।

"आज सारी रात बरफ़ पड़ती रहेगी," उसने कहा।

अनिता स्टोव पर हाथ सेंकने लगी।

बरामदे में पैरों की आहट सुनकर पीटर बाहर निकल आया। जॉन भारी क़दमों से चलता आ रहा था।

"ए पीटर!"

"हलो टैफी!...इस वक़्त बर्फ़ में कैसे निकल पड़े?"

"तुम्हारे क्वार्टर में गया था। तुम वहाँ नहीं मिले तो सोचा, शायद यहाँ मिल जाओ।" और वह मुस्करा दिया।

"वैसे घूमने के लिए मौसम अच्छा है?" पीटर ने कहा।

वे दोनों कमरे में आ गये। अनिता प्यालियाँ धो रही थी। एक प्याली उसके हाथ से गिरकर टूट गयी।

"ओह!"

"प्याली टूट गयी?"

"हाँ, दो थीं, उनमें से भी एक टूट गयी।"

"कोई बात नहीं। सॉसर तो हैं, उनसे प्यालियों का काम चल जाएगा।"

पीटर फिर चारपाई पर बैठ गया। जॉन मेज़ पर रखे फोटोग्राफ के पास चला गया।

"फिआंसे–ए?"

अनिता ने मुस्कराकर सिर हिला दिया।

"यह चिट्ठी भी उसी को लिखी जा रही थी?"

जॉन ने चारपाई पर रखे पत्र की तरफ़ संकेत किया। पीटर पुस्तक का वह पृष्ठ पढने लगा जिस पर से वह पत्र नक़ल किया जा रहा था।

जॉन स्टोव के पास जा खड़ा हुआ और अनिता के शाल की तारीफ़ करने लगा।

चाय तैयार हो गयी तो अनिता ने प्याली बनाकर जॉन को दे दी। अपने और पीटर के लिए सॉसर में चाय डालती हुई बोली, "हमारे घर में कुल दो ही प्यालियाँ थीं। वही मैं उठा लायी थी। आते ही एक टूट गयी।"

जॉन और पीटर ने एक-दूसरे की तरफ़ देखकर आँखें हटा लीं।

“यह सी कॉटेज है तो अच्छी, मगर ज़रा दूर पड़ जाती है,” पीटर दोनों हाथों से सॉसर सँभालता हुआ बोला, “तुम पादरी से कहो कि तुम्हें डी या ई कॉटेज में जगह दे दें। वे दोनों ख़ाली पड़ी हैं। उनमें दो-दो बड़े कमरे हैं।”

“अच्छा?” अनिता बोली, “वैसे मेरे लिए तो यही कमरा बहुत बड़ा है। घर में हमारे पास इससे भी छोटा एक ही कमरा है जिसमें हम तीन जने रहते हैं...। उसमें से भी आधा कमरा मेरे भाई ने ले रखा है और आधे कमरे में हम माँ-बेटी गुज़ारा करती हैं। अब मैं आ गयी हूँ तो माँ को जगह की कुछ सहूलियत हो गयी होगी।...मैं अपनी माँ को बहुत प्यार करती हूँ। पहला वेतन मिलने पर मैं उसके लिए कुछ अच्छे-अच्छे कपड़े भेजना चाहती हूँ। उसके पास अच्छे कपड़े नहीं हैं।”

पीटर और जॉन की आँखें पल-भर मिली रहीं। जॉन का निचला होंठ थोड़ा सिकुड़ गया।

“चाय बहुत अच्छी है!”

“ख़ूब गरम है और फ्लेवर भी बहुत अच्छा है।”

“रोज़ बरफ़ पड़े तो मैं रोज़ यहाँ आकर चाय पिया करूँ।”

पीटर के सॉसर से चाय छलक गयी।

“सॉरी!”

बरफ़ और कुहरे की वजह से बाहर बिलकुल अँधेरा हो गया था। बरफ़ के गाले दूध-फेन की तरह नि:शब्द गिर रहे थे। जॉन और पीटर अनिता के क्वार्टर से निकलकर ऊपर की तरफ़ चले, तो पगडंडी पर दो-दो इंच बरफ़ जमा

हो चुकी थी। अँधेरे में ठीक से रास्ता दिखाई नहीं दे रहा था, इसलिए जॉन ने पीटर की बाँह पकड़ ली।

"अच्छी लडक़ी है, ए?"

"बहुत सीधी है।"

"मुझे डर है कि यह भी कहीं नानावती की तरह...।"

"रहने दो–तुम उसके साथ इसका मुकाबला करते हो?"

"वह आयी थी तो वह भी ऐसी ही थी...।"

"मैं इसे इन लोगों के बारे में सब-कुछ बता दूँगा।"

जॉन को थोड़ी खाँसी आ गयी। वे कुछ देर ख़ामोश चलते रहे। उनके पैरों के नीचे कच्ची बरफ़ कचर-कचर करती रही।

कुछ फ़ासले से आकर टार्च की रोशनी उनकी आँखों से टकराई। पल-भर के लिए उनकी आँखें चुँधियाई रहीं। फिर उन्होंने ऊपर से उतरकर आती आकृति को देखा।

"गुड ईवनिंग बैरो!"

"गुड ईवनिंग टैफी! किधर से घूमकर आ रहे हो?"

"यूँ ही बरफ़ पड़ती देखकर थोड़ी दूर निकल गये थे।"

"बरफ़ में घूमना सेहत के लिए अच्छा है!"

पीटर ने जॉन की उँगली दबा दी।

"तुम भी सेहत बनाने निकले हो?"

इस बार जॉन ने पीटर की उँगली दबा दी।

"हाँ, मौसम अच्छा है, मैंने भी सोचा, थोड़ा घूम लूँ।"

"अच्छा, गुड नाइट!"

"गुड नाइट!"

टार्च की रोशनी काफ़ी नीचे पहुँच गयी, तो जॉन पैर से रास्ता टटोलता हुआ बोला, "यह पादरी का खुफ़िया है खुफ़िया। मैं इस हरामी की रग-रग पहचानता हूँ।"

पीटर ख़ामोश चलता रहा।

सुबह जिस समय पीटर की आँख खुली, उसने देखा कि वह जॉन के क्वार्टर में एक आराम-कुरसी पर पड़ा है– वहीं उस पर दो कम्बल डाल दिए गए हैं। सामने रम की खाली बोतल रखी है। वह उठा, तो उसकी गरदन दर्द कर रही थी। उसने खिड़की के पास आकर देखा कि जॉन चाय का फ्लास्क लिये डाइनिंग-रूम की तरफ़ से आ रहा है। वह ठंडी सलाखों को पकड़े दूर तक फैली बरफ़ को देखता रहा। जॉन कमरे में आ गया और भारी क़दमों से त$ख्ते पर आवाज़ करता हुआ पीटर के पास आ खड़ा हुआ।

"कुछ सुना, ए?"

पीटर ने उसकी तरफ़ देखा।

"रात को पादरी ने उसे अपने यहाँ बुलाया था...।"

"किसे, अनिता को?"

जॉन ने सिर हिलाया। उसकी आँखें क्षण-भर पीटर की आँखों से मिली रहीं। पीटर गम्भीर होकर दीवार की तरफ़ देखने लगा।

"टैफी, मैं उससे कहूँगा कि वह यहाँ से नौकरी छोडक़र चली जाए। उसे पता नहीं है कि यहाँ वह किन जानवरों के बीच आ गयी है!"

जॉन फ्लास्क से प्यालियों में चाय उँडेलने लगा।

"उसमें खुद्दारी हो तो उसे आप ही चले जाना चाहिए," वह बोला, "किसी के कहने से क्या होगा! कुछ नहीं।"

"हो या न हो, मगर मैं उससे कहूँगा ज़रूर...।"

"तुम पागल हुए हो? हमें दूसरों से मतलब? वह अनजान बच्ची तो है नहीं।"

पीटर कुछ न कहकर दीवार की तरफ़ देखता हुआ चाय के घूँट भरने लगा।

"अब जल्दी से तैयार हो जाओ, गिरजे का वक़्त हो रहा है!"

पीटर ने दो घूँट में ही चाय की प्याली खाली करके रख दी। "मैं गिरजे में नहीं जाऊँगा।"

जॉन कुरसी की बाँह पर बैठ गया।

"आज तुम्हारी सलाह क्या है?"

"कुछ नहीं, मैं गिरजे में नहीं जाऊँगा।"

जॉन मुँह ही मुँह बड़बड़ाकर ठंडी चाय की चुस्कियाँ लेता रहा।

दो दिन की बरफ़बारी के बाद फादर फिशर के डिनर की रात को मौसम खुल गया। डिनर से पहले घंटा-भर सब लोग 'म्यूज़िकल चेयर्स' का खेल खेलते रहे। उस खेल में मणि नानावती को पहला पुरस्कार मिला। पुरस्कार मिलने पर उससे जो-जो मज़ाक किये गये, उनसे उसका चेहरा इतना सुर्ख़ हो गया कि वह थोड़ी देर के लिए कमरे से बाहर भाग गयी। मिसेज़ मर्फी उस दिन बहुत सुन्दर हैट और रिबन लगाकर आयी थी; उसकी बहुत प्रशंसा की गयी।

डिनर के बाद लोग काफ़ी देर तक आग के पास खड़े बातें करते रहे। पादरी ने सबसे नयी मेट्रन का परिचय कराया। अनिता अपने शाल में सिकुड़ी सबके अभिवादन का उत्तर मुस्कराकर देती रही।

एटकिन्सन मिसेज़ मर्फी को आँख से इशारा करके मुस्कराया।

हिचकाक अपनी मुस्कराहट ज़ाहिर न होने देने के लिए सिगार के लम्बे-लम्बे कश खींचने लगा। जॉन उधर से नज़र हटाकर हिचकाक से बात करने लगा।

"तुम्हें तली हुई मछली अच्छी लगी?...मुझे तो ज़रा अच्छी नहीं लगी।"

"मुझे मछली हर तरह की अच्छी लगती है; कच्ची हो या तली हुई...हाँ मछली हो।"

जॉन ने मुँह बिचकाया।

"रम की बोतल साथ हो तो भी तुम्हें अच्छी नहीं लगती?"

जॉन दाँत खोलकर मुस्कराया और सिर हिलाने लगा।

मजलिस बरख़ास्त होने पर जब सब लोग बाहर निकले तो हिचकाक ने धीमे स्वर में जॉन से पूछा, "क्या बात है, आज पीटर दिखाई नहीं दिया...?"

जॉन उसका हाथ दबाकर उसे ज़रा दूर ले गया और दबे हुए स्वर में बोला, "उसे पादरी ने जवाब दे दिया है।"

"पीटर को भी?"

जॉन ने सिर हिलाया।

"वह कल सुबह यहाँ से चला जाएगा।"

"क्या कोई ख़ास बात हुई थी?"

जॉन ने उसका हाथ दबा दिया। पादरी और बैरो के साथ-साथ अनिता सिर झुकाए शाल में छिपी-सिमटी बरामदे से निकलकर चली गयी। जॉन की भूरी आँखें कई गज़ उनका पीछा करती रहीं।

"यह आप भी गरम पानी से नहाता है या नहीं?"

"क्यों?" बात हिचकाक की समझ में नहीं आयी।

"इसने डाली को गरम पानी से नहलाया था न–!"

हिचकाक हो-हो करके हँस दिया। बरामदे में से गुज़रते हुए हक़ीम ने आवाज़ दी, "ख़ूब कहकहे लग रहे हैं?"

"मैं तली हुई मछली हज़म कर रहा हूँ," हिचकाक ने उत्तर दिया, और ऊँची आवाज़ में जॉन को बतलाने लगा कि बग़ैर काँटे की मासेर मछली कितनी ताक़तवर होती है।

सुबह जॉन, अनिता, नानावती और हक़ीम बैचलर्स डाइनिंग-रूम में नाश्ता कर रहे थे, जब पीटर का रिक्शा दरवाज़े के पास से निकलकर चला गया। पीटर रिक्शे में सीधा बैठा रहा। न उसे किसी ने अभिवादन किया, और न ही वह किसी को अभिवादन करने के लिए रुका। अनिता की झुकी हुई आँखें और झुक गयीं–जॉन ऐसे गरदन झुकाए रहा जैसे उस तरफ़ उसका ध्यान ही न हो। बैचलर्स डाइनिंग-रूम में कई क्षण ख़ामोशी छाई रही।

सहसा पादरी को खिड़की के पास से गुज़रते देखकर सब लोग अपनी-अपनी सीट से आधा-आधा उठ गये।

"गुड मार्निंग फादर!"

“गुड मार्निंग माई सन्स!”

“कल रात का डिनर बहुत ही अच्छा रहा, “हक़ीम ने चेहरे पर विनीत मुस्कराहट लाकर कहा।

“सब तुम्हीं लोगों की वजह से है।”

“मैं तो कहता हूँ कि ऐसे डिनर रोज़ हुआ करें...”

पादरी आगे निकल गया, तो भी कुछ देर हक़ीम के चेहरे पर वह मुस्कराहट बनी रही।

“मेरे लिए उबला हुआ अंडा अभी तक क्यों नहीं आया?” सहसा जॉन गुस्से से बड़बड़ाया। अनिता स्लाइस पर मक्खन लगाती हुई सिहर गयी। किरपू ने एक प्लेट में उबला हुआ अंडा लाकर जॉन के सामने रख दिया।

“छीलकर लाओ!”जॉन ने उसी तरह कहा और प्लेट को हाथ मार दिया। प्लेट अंडे समेत नीचे जा गिरी और टूट गयी।

उधर गिरजे की घंटियाँ बजने लगीं... डिंग-डांग! डिंग-डांग! डिंग-डांग!”

5. हृदय की पुकार

लेखक: अ. न. कृष्णराव

लेखक परिचय:-

आधुनिक कन्नड़ साहित्य को नयी दिशा की ओर अग्रसर करनेवाले बहुमुखी प्रतिभाशाली श्री अ.न.कृ. आधुनिक कन्नड़ साहित्य के आधार स्तम्भों में प्रमुख माने जाते हैं। साहित्य क्षेत्र में आप अपूर्व शक्ति हैं। कन्नड़ के दीन व्यक्ति हैं। साहित्य की विधा में चाहे कहानी हो या उपन्यास, नाटक हो या निबन्ध, विमर्शात्मक ग्रन्थ हो या शोधग्रन्थ आप श्रेष्ठ हैं। आप कन्नड़ के प्रथम साहित्यकार हैं, जिन्होंने डेढ सौ से अधिक उपन्यास लिखे हैं। आपको आधुनिक कन्नड़ के अनभिव्यक्ति साहित्य सम्राट कहा जाता है।

***

"उसमान!.... उसमान!...

सोये हुए पुत्र से जवाब नहीं आया।

"उसमान!.... बेटा!...."

"दादा!"

"उठो बेटा!"

बेटे ने उठकर बाप का मुख देखा। उसके विशाल मुख पर जगमगाते हुए दी बड़े बड़े अश्रुपूर्ण नयनों को देखा। बाप ने भी बेटे को देखा। नींद के बहाने सारी रात रोकर काटेने की वजह से लाल हुए नेत्रों की गुप्त पीड़ा का अनुभव किया। जन्म लेने के छः महीने बाद ही माँ को खोकर, उसमान अपने पिता के अपरिमित प्रेम के आश्रय में पला था। बेटे को

फूलता-फलता देखकर बाप ने गरीबी की दारुण वेदना भी भुला दी थी। अब उसके सामने खड़ा था, उसका बेटा... जिसे उसने बीस वर्ष तक पाल पोसकर बड़ा किया था जो उसके जीवन का एकमात्र प्रकाश था। याद करते करते मुहम्मद की लम्बी सफेद दाढ़ी आँसुओं से भीग गयी।

उसने कई बार सोचा था कि बेटे को इस जीवन से छुड़ा, चार आदमियों के बीच खड़े होने योग्य बनाऊँ। बडे सवेरे उठना, खाली पेट को भरने के लिए कँधे पर सारंगी लादकर बाजार या और कहीं लोगों से भरे प्रदेश जाना, कबीर, मीरा, पुरन्दरदास आदि के भजन गला फाड़-फाड़कर गाना, दोपहर को पैसे बटोरकर अपना पेट भरना, जीवन के इस दैनिक कार्यक्रम से मुहम्मद बिलकुल ऊब गया था। 'साँझ को क्या हो? कल क्या होगा?.. बीमार पड़ा तो क्या करूँ?' बिना इन चिन्ताओं के दोनों वक्त अपना पेट भरने योग्य कोई काम उसमान को दिलाने की उसकी बड़ी अभिलाषा कुछ ही दिनों पहले पूरी हुई थी।

उसमान का सुन्दर रूप, सुरीला गला, चलने-फिरने के ढंग आदि ने कलकत्ता पारसी नाटक कंपनी के मालिकों को आकर्षित किया था। बहुत चर्चा के बाद निश्चय हुआ कि उसमान अपने जीवन की सारी उन्नति के एकमात्र कारण अपने बाप को छोड़कर, कम्पनी में माहवार पचास रूपये की तनख्वाह पर शामिल हो जाय। उसमान को तृप्ति थी कि अपनी कमाई के रुपये भेजकर दी चार दिन पिता को आराम से तो रख सकेगा। बेओ के वियोग की चिन्ता से मुहम्मद दो-

चार दिनों में ही अधमारा हो गया था। लेकिन उसके मान में, कभी-कभी बिजली की तरह विचार उठते,"उसके सुख को मैं क्यों कुण्ठित करूँ? मेरा उसमान एक बहुत बड़ा गवैय्या भी हो जायगा।" इस विचार से उसके मन को शांति मिलती है।

रेल के चलने का समय हो गया। बाप बेटा एक दूसरे की बाहों में बद्ध होकर आँसुओं से एक दूसरे को भिगो रहे हैं। वृद्ध ऋषि सा बाप तरुण सुन्दर बेटा। दोनों दुख में अपने को भूल गये हैं। बेटे का मन बाप की चिन्ता से भरा और बाप का बेटे की चिन्ता से। बीच-बीच में अस्पष्ट रूप से बोल उठता।

"दादा!"

"बेटा!" प्रतिध्वनि की भाँति बाप के हृदय को चीरता हुई आह निकलती। आखिर रेल के कर्मचारी ने दोनों को अलग किया। रेल भी धीरे-धीरे चली... रेल के साथ ही मुहम्मद बेटे को अपलक नेत्रों से देखते हुए दौड़ता। बेटा झुककर बाप की दाढ़ी पर हाथ फेरता।

"दादा... दादा..." वह पुकारता। थककर ठहर गया। रेल वेग से आँखों से ओझल हो गयी। मुहम्मद पाँव घसीटते हुए धीरे-धीरे लौटा। उसकी जबान पर तीन ही बातें थीं, जो मंत्र के उच्चारण की तरह रुक-रुककर स्पष्ट सुनाई पड़ती थीं। आसपास जाने वाले आश्चर्य से बूढ़े की तरफ देखते, फिर हँसते चले जाते। लेकिन बूढ़ा मुहम्मद सिर झुकाकर चुपचाप

आगे बढ़ रहा था। उसके मुख से लगातार तीन शब्द निकलते थे - "बेटा... दादा... खुदा..."

कलकत्ते की पारसी नाटक कम्पनी में उसमान को पाँच वर्ष बीत गये। अब उसमान वह नहीं था जो अपने पेट भरने पाँच वर्ष पहले कम्पनी में शामिल हुआ था। अब वह कम्पनी का सर्वश्रेष्ठ तथा प्रधान अभिनेता गवैया उसमान खां साहब था। रंग, रोशनी और आनन्द रहित दरिद्र कुटीर जीवन से रंगीले साम्राज्य के सिंहासन पर एकदम चढ़ जाने के कारण उसमान अपना पुराना जीवन भूलता जा रहा था। पिता को छोड़कर आने के बाद इन पाँच वर्षों में विद्यार्जन में उसने जो कष्ट उठाये थे, वह भी भूलता गया। उसकी आज की स्थिति के प्रधान कारण पिता की सहनशीलता, आत्मार्पण आदि भी उसने भुला दिये। उसका लक्ष्य सिर्फ यही था कि वह कैसे एक पद से दूसरे उच्चतर पद की तरफ बढ़े। इस तरह पाँच वर्ष के सतत प्रयत्न से गवैय्या के स्थान को प्राप्त कर उसमान अपनी कम्पनी के मालिक तथा प्रेक्षकों की आँखों का तारा बन गया था।

उसमान के सुरीले गले की मीठी तान पर सब मुग्ध हो गये थे। कभी-कभी उसमान अपने संगीत पर आप ही रीझ जाता। रंगमंच के लायक रूप भी होने की वजह उसकी उन्नति में बड़ी सहायता पहुँची। मजनू फरहाद, सुलेमान, दुष्यंत आदि श्रृंगार रस प्रधान पात्रों की भूमिका के लिए उसमान बहुत प्रसिद्ध था। परसों की भिक्षावृत्ति भी खतम हो चुकी थी और कल की साधना भी पूरी हो गयी थी। आज

उसमान सिद्ध पुरुष था। उसकी छोटी सी बात भी उसके अनुयायियों के लिए महत्तर आज्ञा बन जाती थी। कम्पनी के मालिक से लेकर मामूली नौकरी तक उसका मन बहलाना अपना प्रमुख कर्त्तव्य समझते थे। इस तरह उसमान कम्पनी का अनभिषिक्त सन्नाट था। नाटकों को स्वीकार करना हो, उसमान की आज्ञा चाहिए। नये नटों की कम्पनी में भर्ती करना हो, उसमान की स्वीकृति चाहिए। नाटकों के प्रदर्शन के लिए उसमान की राय अत्यन्त आवश्यक थी। कम्पनी के सारे काम उसमान की इच्छा के अनुसार चलने लगे।

पारसी कम्पनी में नायक उसमान था, तो नायिका प्यारी थी। उसमान की ख्याति सुनकर प्यारी अपनी पुरानी कम्पनी छोड़कर "हीरोइन" बनने के लिए इस कम्पनी में आ गयी थी। उसकी कम्पनी में शामिल करने के बारे में भिन्न भिन्न अभिप्राय पैदा हुए थे। कुछ नटों का अभिप्राय था कि यह बहुत कम्पनियों और उनके मालिकों का दिवाला निकलवाने वाली नटी है। व्यवस्थापक का विचार था कि वह जितनी तनख्वाह माँगती है उसे देना हमारी शक्ति से परे है। लेकिन उसमान का इरादा था - वह बहुत सुन्दर, वह हमारी कम्पनी के लिए जरूरी है।" आखिर यही तय हो गया।

पतली गोरी देह, लम्बे घुंघराले केश बड़े बड़े चंचल कमल से नयन, जरा छोटी होने पर भी सुन्दर नाक, उस पर रत्न की नथ, कानों में वज के झूमर, गुलाब के रंग की चोली पर नारंगी रंग की महीन साड़ी, हाथों में रेशम की छोटी सी थैली, उसमान प्यारी के ऐसे चलीले सलोने शरीर पर मुग्ध

हुआ हो या उसके कोमल स्वर पर, कुछ भी हो, प्यारी उसकी कम्पनी की नायिक बन ही गयी।

उसमान और प्यारी के गान और अभिनय देखने के लिए लोग दूर-दूर से आने लगे। हर कहीं उनकी कीर्ति का बखान हो रहा था। हर किसी की जबान पर उन्हीं गीतों के पद रमते, हर दिशा में उसमान और प्यारी की कीर्तिलता फैलने - महकने लगी।

जैसे-जैसे उसमान प्यारी की ख्याति फैलने लगी, वैसे ही उनके चाल चलन के बारे में भी अफवाहें फैलने लगीं। प्यारी के विरूद्ध जितने नथ थे, वे उस पर झूठा सच्चा आरोपण लादते और बाहर भी उसकी प्रचार करते। कई बार बुरे अर्थ को सूचित करने वाले समाचार भी पत्रों में छपने लगे। रंगमंच की नायिका उसमान के जीवन में भी पाँव रखती गयी। प्रेम के अभाव में सूखे पड़े हुए उसमान के हृदय कानन को कामरूपी ज्वाला बड़े जोर से जलाने लगी। मैं... मेरा मान... मेरी विद्या, मेरी हैसियत... ये सब विचार उसमान के मन से प्यारी की याद आते ही धुल जाते। बैठा हो, खड़ा हो, जहाँ कहीं भी हो, उसकी आँखों को प्यारी ही प्यारी दिखाई देती। प्रेम के पवित्र जीवन के लिए तैयार होते समय ही मोह की ज्वाला उसमान के अंतःकरण को कुरेदने लगी। प्यारी उस पर रीझती, तो उसमान विनीत भक्त की भाँति अपना सब कुछ उसके लिए अर्पण करता, वह तिरस्कार करती तो भिक्षुक की तरह प्रणय भिक्षा माँगता।

प्यारी जब अपने पुराने दीस्तों को खोजती अभिसारिका बन जाती तब उसमान क्रोध से जर्जरित हो जाता। लेकिन प्यारी के एक ही चितवन से उसके क्रोध ककी भंयकर ज्वाला हिम की तरह पिघलकर आँसुओं की धारा के रूप बहते हुए प्यारी के पाँव धोती। जब वह रूठकर जाती, तब देवी के सच्चे उपासक की भाँति खुदा से प्रार्थना करता कि उसका कृपा कटाक्ष मुझ पर शीघ्र पड़े। असल में उसमान का सरल, शुभ्र, पवित्र मन, भयंकर ताण्डव नृत्य के रंग के रूप में परिणत हो गया। इसको शांत करने के लिए। प्यारी के अमृत हस्त से ही प्रथम बार सीखे हुए मधुपान में अपने को भूल जाने की कोशिश करता। मोह की पीड़ा एक तरफ, मधु का प्रलोभन दूसरी तरफ इन दोनों के बीच फँसकर उसमान को अपने आप की सुध न रही। मन लगता, तो रंगमंच पर ठीक तरह से अभिनय करता, नहीं तो तरह - तरह के बेढंगे अभिनय करते हुए बेसिर पैर की बातें बकता और अभिनय का काम ज्यों त्यों निभा लेता।

नगर के पश्चिम की छोर पर कुछ झोंपड़ियाँ हैं, दरिद्रता के जीव से रौंदे गये मनुष्य नामक प्राणियों के घर हैं। भिक्षा से दिन का ग्रास पान। घर आकर उसे खाना और निश्चिन्त होकर सो जाना। उसते ही यथाविधि सारंगी या वयलिन लेकर चलना।

ऐसा एक घर मुहम्मद का भी था। उसने उसे खुद अपने हाथों बनाया था। अपनी स्वर्गीया पत्नी की याद में उसे बड़े प्रेम से अमीना महल कहकर पुकारता। वह स्वप्न

देखता। जब उसमान अपनी नव विवाहिता पत्नी को लेकर घर आएगा, तब उनके लिए एक अलग कमरा बनाऊँगा। बहु को अपनी ही बेटी की तरह बड़े प्रेम से इस तरह पालूँगा कि वह प्रार्थना करेगी - "या खूदा! ऐसे ससुर और पति मुझे जन्म में मिलें।" मुहम्मद की आत्मा के पंछी ने उसमान के अंतरंग में अपना घोंसला बनाया था। सारंगी बजाते बजाते उसमान को याद कर लम्बी साँस भरता। सोचता यह आसावरी बेटा गाता तो कितना अच्छा लगता... वह हिंडोल बेटे की ध्वनि में कितना फलता है, यह भैरव बेटे को कितना अच्छा लगता है।

थककर घर लौटता तो कभी-कभी मारे आदत के जोर से ऊँची आवाज में पुकारता "रे बेटे उसमान! " लेकिन उसमान का कलकत्ते में होना याद मन मसोसकर रह जाता। अपने घर की दीवारों को अलंकृत करने वाली उसमान के अभिनय की तस्वीरें ही उस पर छाया तथा शांति बरसाने वाली कल्पवृक्ष थे। तस्वीरों को आँखें फाड़कर देखते हुए प्रेम, कौतूहल, गर्व, अनिरीक्षित भय, शोक आदि भावों से भरकर उन्हें इस तरह चूमता, मानों वह खुद उसमान को ही चूम रहा हो।

कभी सोचता – "किसी भी तरह एक बार कलकत्ता - जाकर बेटे के वैभव को देखकर आऊँ।" दूसरे ही क्षण राजवेश से भूषित होकर, ठाठ बाट से कीमती मोटर में बैठे हुए अपने बेटे की तस्वीर की ओर दृष्टि फेरकर सोचता "नहीं! अब वह राजकुमार है, और मैं एक भिखमंगा। मैं क्यों उसके यहाँ जाऊँ?.. उसके दीस्त पूछेंगे कि मैं कौन हूँ, तो

उसे उत्तर देने में कितना संकोच होगा?" इन्हीं बातों पर बहुत सोचता रहा। हाँ! मैं भिखमँगा हूँ। तो क्या कलकत्ते जाने पर मेरा बेटा मुझे एक भिक्षुक समझकर ठुकरा देगा? लेकिन दूसरे ही क्षण अपनी मूर्खता को धिक्कारता हुआ हँस पड़ता।

उसमान को पिता को छोड़े छः वर्ष बीत गये थे। उसमान एक साल पहले तक पिता को बराबर पत्र लिखता, कभी-कभी थोड़े रुपये और अपने अभिनय की तस्वीरें भी भेजता, लेकिन अब उसने एकदम चुप्पी साध ली थी।" आज आ जायगा... कल जरूर आयगा... इसी सोच में पड़कर पत्र की प्रतीक्षा करते करते मुहम्मद चिन्ता से जर्जर हो गया था। कभी सोचता -"बीमार तो नहीं हो गया?" किसी भी तरह सोचने पर भी कोई उत्तर न मिल सका। पारसी कम्पनी के व्यवस्थापकों के नाम उसने चिट्ठी लिखी, लेकिन जवाब नहीं आया। मुहम्मद के दुख का अन्त न था। उसने निश्चय कर लिया कि किसी भी तरह कलकत्ते जाकर बेटे को देखुँगा ही।

जेब में थोड़े रुपये थे। उसमान के शादी करके घर आने पर उसकी पत्नी के लिए एक अच्छी साड़ी खरीदने और मकान बनवाने के लिए बड़ी मेहनत से पेट का अन्न काटकर उसने सौ रुपये संग्रह किये थे। आज उसका उपयोग करना पड़ा है। बिना उपयोग किये कोई दूसरा मार्ग नहीं। इसलिए मुहम्मद पचास रुपये और राह में भोजन के लिए आठ दस गेहूँ की रोटियाँ लेकर, उसी दिन रात को कलकत्ते के लिए रवाना हो गया।

कलकत्ता जैसे विशाल और समृद्ध नगर में गरीब मुहम्मद की कौन सुने? नया स्थान, नया वातावरण, साथ ही यह भय कि कहीं कोई पैसे चुरा न ले! शहर में घूम-घामकर थक गया। उसमान का पता बताने वाला कोई न था। आखिर उसे याद आयी कि उसमान एक पारसी कंपनी में शामिल हुआ है। तब वह कलकत्ते की पारसी कम्पनियों में उसमान को खोजता हुआ चला।

आखिरकार तीन दिनों की निरर्थक और विफल खोज के बाद उसमान की पारसी कम्पनी का पता लगा। मुहम्मद का हृदय उद्वेग से धड़कने लगा। मेरा बेटा मुझे पहचानेगा?... नहीं पहचानता तो?.. कम्पनी के आँगन में प्रवेश करने को ही था कि अन्दर से एक मोटर मुहम्मद के सामने से चली गयी। अंदर बैठा हुआ व्यक्ति आँखों के आगे से गुजर गया। उसमान से बहुत मिलता-जुलता... वही न हो? अन्दर प्रवेश कर वहाँ के एक नौकर से उसने पूछा। इस वृद्ध व्यक्त के प्रश्न में उसके उसमान से परिचित होने की झलक पाकर वह आश्चर्य से बोला- "जी हाँ, वही गवैया उसमान खाँ साहब हैं।" मुहम्मद के मन की आशा छलाँगें मारने लगी। वह बेहद खुश हुआ। पूछा- "अब कहाँ चले हैं?''

नौकर ने उत्तर दिया- "दिल्ली। कम्पनी भी वहीं गयी है। आज की रेल से खाँ साबह भी चले जाएँगे।" मुहम्मद के सिर पर वज्र का प्रहार सा हुआ। बदहवास होकर वह स्टेशन कर तरफ दौड़ा।

दिल्ली जाने वाली रेल के प्लाटफार्म पर मुहम्मद का पहुँचना था कि रेल स्टेशन छोड़कर चली गयी। मुहम्मद वहीं धरती पर धँस गया, वह पुकार उठा -"या खुदा! मुझ पर तुझे भी रहम नहीं।" उसकी पुकार आकाश को चीरते हुए अनन्त में विलीन हो गयी।

दिल्ली के प्रवास को पूरा कर पारसी कम्पनी कलकत्ता लौटी। प्यारी पर तब तक अन्य नटों के मन में जो जलन थी, वह अब स्पष्ट होने लगी। नटों के असंतोष का समाधान करने के लिए व्यवस्थापक आतुर हुए। प्यारी और उसमान के बर्ताव से सारा कलकत्ता नगर आश्चर्य चकित हो गया। उसमान जब तक अपनी अमानुषीय गान कुशलता से लोगों का मनोरंजन करता था, तब तक जनता उनके विचित्र •बर्ताव पर ध्यान नहीं देती थी। लेकिन अब.. गले की सम्पत्ति का ह्रास होने पर अभिनय में बेहद स्वेच्छाचार होने पर... मानवीय मर्यादा का उल्लंघन अभिनय करके, बेहद शराब पीकर, प्यारी के गले में बाँहें डाल रास्तों में घूमने लग जाने... उसका गौरव भी कम होता गया।

पहले प्यारी- उसमान के जिन नामों ने कम्पनी को लाखों रुपये दिलाये थे, अब उन्हीं के कारण कम्पनी का खर्च पूरा होना भी दूभर हो गया। व्यवस्थापकों ने परिस्थिति की विषमता को लक्ष्य कर नायिका दोनों को कम्पनी छोड़कर चले जाने का नोटिस दे दी। उसमान अब सचमुच चिन्ता में पड़ गया। अभी वह सोच ही रहा था कि प्यारी अपनी पुरानी

कम्पनी में फिर से शामिल होकर उसमान को बिलकुल भूल गयी।

उसमान की आँखें खुली। अपनी स्थिति का अब उसे अनुभव हुआ। कमाये हुए हजारों रुपये उसने प्यारी के सुख के लिए दिल खोलकर खर्च किये थे। आज प्यारी लक्षाधिपति है, लेकिन वह पहले का भिखमंगा। पहले का अपना सुरीला गला भी वह खराब कर चुका था। देह भी दुर्व्यसनों में पड़कर नाद रहित बाँसुरी की तरह क्षीण हो चुका था। आँखें, गाल। हृदय का पिंजरा सब दुर्बल हो गये थे और वह अंतिम संस्कार के लिए तैयार शव की तरह बन गया था। अन्दर के इस खोखलेपन के कारण उसमान अंतरंग से निराश्रित था... और अब बाहर के सौभाग्य को गँवाकर बाहर से भी निराश्रित बना।

यह आघात उसे एक भूल से दूसरी भूल की ओर ले चला। छोटी-मोटी कम्पनियों में शामिल होकर वेश्याओं के संग मद्यपान करते हुए वह अपने पतित जीवन के गाने को पूरा करने का प्रयत्न करने लगा। नाविक की खोई हुई नाव की तरह उसका जीवन आँधी के प्रचण्ड झोंको में फँस गया था। इसके परिणाम स्वरूप उसे शल्य चिकित्सा का आश्रय लेना पड़ा।

शल्य चिकित्सा पूरी करके उसमान सार्वजनिक अस्पताल के बाहर आया है। उसकी बाहरी निराश्रिता नहीं गयी है लेकिन अंदरूनी निराश्रिता कुछ कम हुई है। वैद्यशाला में उसके बगल के एक बिस्तर पर एक छोटा सा बीमार बालक

था। उसमान ने उसके माता-पिता को उसकी सतत सेवा करते हुए देखा था। इस दृश्य ने उसके अंतकरण में छिपी हुई कई पुरानी बातें जगायी थीं। आज से पहले अपने जीवन में घटी हुई घटनाएँ एक-एक करके याद आने लगीं।

उसे याद आया कि कितना सरल, सद्‌गुणी सुकुमार था और उसे याद आया अपना पिता। उसकी ममता, माँ को खोए हुय पुत्र का पालन करने की रीति, थोड़े से भी श्रम से उसमान के थक जाने पर भय से उस बुढ़ापे में भी सब काम अपने ही हाथों करने की उदारता, उसमान के हित के लिए सब कुछ अर्पण करने का निष्काम प्रेम ! सब याद करके वह बच्चे की तरह रोने लगा। बीच बीच में उसके मुख से रुककर आवाज आती- "दादा ! दादा ! दादा!" उसने जाना कि दुःख के आगे वह कितना नादान शिशु है। दुःख के आवेग में रोते रोते उसकी आँखें लाल हो गयीं थी, लेकिन हृदय पर से मानों एक बहुत भारी बोझ उतर गया था।

उसने सोचा कि गाँव लौटकर पिता की चरण धूलि माथे पर चढ़ाऊँ। लेकिन अपनी हालत पर उसे शरम आयी। सोचा। 'बाप समझता होगा कि बेड़ा बड़ा धनवान हुआ है, लेकिन मैं ऐसी हालत में मुँह कैसे दिखाऊँ? लेकिन... वह आखिर पिता तो है... जब मैं एक अनाथ शिशु था, तभी से मुझे पालने पासने वाला पिता... प्रेम का धन का पर्दा क्यों रहे, मन में यह विचार स्थिरकर उसमान अपने गाँव चला।""

मुहम्मद किस तरह गाँव पहुँचा, यह तो वही जाने। रेल से उतरते ही निशक्त होकर वह गिर पड़ा। पहले से ही दुख

से जीर्ण देह बेटे को न देख सकने के दुख को सह न सकी। कुछ दयावान व्यक्तियों ने उसे उठाकर सार्वजनिक अस्पताल में भर्ती कराया। उसके व्यावसायिक बन्धु कभी कभी उसके पास बैठकर उसे सान्त्वना दिलाते। देह में रहने की इच्छा न होते हुए भी, उसकी आत्मा देह छोड़कर जाने में हिच-किचाते हुए, मुहम्मद को बहुत सताने लगी। हृदय के रोग की दवा प्रेम ही है। चिकित्सकों ने निराशा से सिर हिला दिया।

निद्रा में, सुषुप्ति में, जागृति में मुहम्मद की सिर्फ एक ही रट थी "उसमान!.... मेरा बेटा!... ऐसी पीड़ा से पीड़ित होते हुए भी उसने दयामय खुदा" को न भुलाया। प्रार्थना करता - "या खुदा! मुझे अपने पास बुलाते तो... लेकिन पुत्र के मोह को क्यों रख छोड़ा?" दूसरे ही क्षण आप ही हँसकर सोचता- "शायद यही दिखाने कि बेटा भी खुदा ही है।"

एक वैद्य ने कहा कि हृदय दुर्बल है... दूसरे ने कहा कि फेफड़ा खराब है। लेकिन सब एक बात पर राजी थी कि उसे क्षय हो गया है। दवा पिलाने नर्स आती तो उसके हाथ पकड़कर मुहम्मद कहता - "बेटी, मुझे यह दवा क्यों देती हो, एक बार उसमान को बुलाओ। उसके देखकर बेफिक्री से यह यात्रा खतम करूँगा।" फिर दीनता भरी दृष्टि से नर्स मन को दया में डबो देता।

एक दिन प्रातःकाल बादल घिरे न थे, लेकिन आकाश में हर्ष का कोई चिन्ह नहीं था। एक तरह की गम्भीरता का भीतर सौन्दर्य फैला हुआ है। मुहम्मद सुबह की नमाज में मग्न

है। उसके सरल हृदय से निकलने वाली प्रार्थना में मिलकर और दी व्यक्ति घुटने टेककर सामने बैठे हैं। मुहम्मद के मुँह से एक अपूर्व आभा झलकी रही है। अंतरंग की शान्ति का प्रतिबिम्ब उसके मुँह पर है। प्रार्थना खत्म कर, नौकर की सहायता से धीरे धीरे बिस्तर पर - बैठकर, पास खड़े हकीम से उसने कहा - "हकीम जी!... आज मेरे खुदा ने कहा है।"

"क्या, खाँ साहब?"

''मैं... मैं अपने बेटे को देखूँगा।"

"हाँ, खाँ साहब!"

"क्या, यह सच है, हकीमजी?... तो क्या मैं उसमान को जरूर देखूँगा?""""

"हाँ, देखेंगे, खाँ साहब!.. मैं ही उनको बुलाकर लाता हूँ।"

'कहाँ? कहाँ?.. जल्दी बुलाइये।"

"इतनी उतावली न कीजिये, खाँ साहब! मैं वादा करके फिर चूकने वाला नहीं। आप जरा चाय पीजिये। मैं उनको बुला लाता हूँ।"

चाय के प्याले को हाथ में लेकर, थोड़ा पीने के बाद मुहम्मद ने सिर उठाया। सामने खड़ा हकीम न था, कोई अपरिचित था। मुहम्मद ने आँखें मलकर उस व्यक्ति को घूरते हुए पूछा- आप कौन हैं!"

"मैं कौन हूँ?"

उत्तर देने वाले व्यक्ति के पीछे अपने एक व्यावसायिक बन्धु को खड़ा देखकर मुहम्मद ने सोचा ने शायद उसका कोई दीस्त होगा। लेकिन हृदय न जाने क्यों धड़क रहा था।"

वह अपरिचित फिर से बोला- "खाँ साहब!"

"जी!

"दा... दा....

उसकी आवाज याद आयी। उसे घूरकर देखा।

"बेटा!... आ गये!"

सिर्फ इतनी बातें उसके मुँह से निकल पायीं। बाप बेटे लिपट गये। थोड़ा समय हुआ। उसमान के साथ आने वाले ने दोनों को अलग मुहम्मद को बिस्तर पर लिटाया। उसमान ने पिता के पास बैठकर उसकी दाढ़ी को चूमा, उसके मुँह पर धीरे धीरे हाथ फेरे और आँसुओं को अपने कुर्ते के छोर से पोंछा। फिर बोला - "दादा! आखिर तुम्हें देख तो पाया।"

"बेटा! आ गये! आओ, मुझे छाती से लगा लो। खुदा तुम्हारा भला करे। मेरी अमीना.. आज जिन्दा होती तुम्हें देखकर..'

उसमान ने पिता को छाती से लगा लिया। थोड़ी देर बाद उसने घबराकर देखा वही स्मित, शान्त बदन वही सरल निष्काम प्रेम का लीलानाट्य- लेकिन.... पंछी उड़ गया था ।

"दादा! दादा! दादा!" उसमान पिता की निश्चल देह पर गिर पड़ा।

कहीं से "बेटा! उसमान! खुदा!" की प्रेम परिपूर्ण प्रतिध्वनि सुनायी पड़ी।

~@~

6. पाँचवाँ बेटा

लेखिका: नासिरा शर्मा

लेखिका परिचय:-

नासिरा शर्मा 1948 में इलाहाबाद में जन्मी नासिरा शर्मा हिन्दी कथा साहित्य में महत्त्वपूर्ण नाम है। उन्होंने फारसी भाषा और साहित्य में एम। ए। तक शिक्षा ग्रहण की है। हिन्दी सहित उर्दू, अंग्रेजी और पश्तों भाषा साहित्य की जानकार नासिरा शर्मा ने ईरान, इराक, अफगानिस्तान और पाकिस्तान के साहित्य, राजनीतिक परिवेश और बौद्धिक हलचलों पर पर्याप्त विमर्श और नियमित लेखन किया है।

प्रमुख रचनाएँ: उपन्यास: सात नदियाँ-एक समुन्दर शाल्मली, ठीकरे की मँगनी, जिन्दा मुहावरे, अक्षयवट, कुइयाँजान और 'जीरो रोड' कहानी संग्रह 'शामी कागज पत्थर गली', इब्ने मरियम, संगसार, सबीना के चालीस चोर, खुदा की वापसी, दूसरा ताजमहल, इनसानी नस्ल, बुतखाना। रिपोर्ताज: 'जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं। लेख संग्रह: राष्ट्र और मुसलमान, औरत के लिए औरत। नाटक - दहलीज, प्लेटफार्म नं. सेवेन। आलोचना: किताब के बहाने, राजनीतिक-सामाजिक अध्ययन, अफगानिस्तान: बुजकशी का मैदान, मरजीना का देश इराक।

नासिरा शर्मा सामाजिक विषमताओं को दैनंदिन घटनाओं और अपने आसपास के पात्रों के माध्यम से उभारने में पारंगत हैं। यही उनका रचनात्मक वैशिष्ट्य है।

****

अमतुल पर सुबह से झुंझलाहट सवार थी बात-वे-बात वह चीजें पटककर अपना गुस्सा उतार रही थीं। अब गुसलखाने की मुंडेर पर बैठा कॉव-कॉव करता कौआ उनको तैश दिला गया और आव देखा न ताव, पैर की जूती निकाल जोर से निशाना साधा... चल-मर कमबख्त! बेसुरे राग अलापने को मेरी ही मुँडेर मिली थी तुझे! कौआ चोट खा नीम के पेड़ पर जा बैठा; मगर काँव-काव नहीं छोड़ी और न अमतुल ने उसका कोसना ।

पिछले कई दिनों से अमतुल को फिक्र लगी थी कि मोहर्रम का महीना सिर पर है और काम करने वाले रहमान का कहीं पता नहीं है। बात इमामबाड़े की न होती तो वह सज्जन या सूरज, किसी को भी बुला लेतीं। माना कि आने वाले महीने लपलपाती धूप के होंगे, मगर बादलों का क्या ठीक, कब वरसा दें रहमत की बारिश और अमतुल का सारा बदन इस खयाल से गनगना उठा कि सजे ताजिया और अलम का क्या हाल होगा पानी से भीगकर?

"अत्तो खाला..." खुले दरवाजे की कुंडी खड़क उठी।

अमतुल की बेताब नजरें टाट के झूलते परदे की तरफ उठीं, जहाँ पर एक ही साया खड़ा नजर आया। चेहरे की खुशी पल भर में निराशा में बदल गई। तो भी बेताबी से पूछ बैठी, "मिला था रहमान?"

"मिला था, खाला, कुँवर साहब के यहाँ चिनाई का काम करवा रहा है। बोला, फुरसत नहीं है।"

"बौरा गया है क्या?"

"अब वह ठेके पर काम लेने लगा है। उसके नीचे पाँच बेलदार काम कर रहे थे।"

"तुमने बताया था कि इमामबाड़े की छत की हालत ठीक नहीं।"

कहा था, खाला, वह तो छाता लगाए कुर्सी पर बैठा था। पान चबाने उसे फुरसत कहाँ थी जो जवाब देता। सच जानो, हमको बहुत बुरा लगा। अब हम उसे बुलाने दोबारा नहीं जाएँगे।"

अमतुल के चेहरे पर बेबसी के बादल घिर आए। दिल में हूक उठी कि चार पहाड़ से लड़के जनकर भी उन्हें कौन-सा सुख मिला। किसी भी लड़के को न माँ की फिक्र है, न दीन व मजहब की, बस नौकरी करे जा रहे हैं। महीने में भेजे मनीऑर्डर क्या मेरा अकेलापन दूर कर सकते हैं? क्या इस रहमान बेलदार का दिमाग सीधा कर सकते हैं जो सै बार बुलाने पर भी न आया?

"देखो खाला, चिन्ता की बात नहीं, हम काम करने को तैयार हैं। जब जरूरत पड़े, बुला लेना।" इतना कहकर सुलाखी चला गया। वह इससे ज्यादा कुछ कह भी नहीं सकता था। उसे बचपन से पता था कि खाला को उसका पड़ोस भाता है, मगर इमामवाड़े में हाथ लगवाना अच्छा नहीं लगता है।

अपने में कुढ़ती अगतुल छुट्टे पाजामे में हिलाती-डुलती इमामवाड़े की चौखट पर पहुँची और उसके किवाड़ खोले। चूहों ने बल्लियों में घुड़दौड़ मचा कुछ मिट्टी के टुकड़े नीचे

गिराए। कमरे की पत्ती जला उन्होंने सूने इमामबाड़े को देखा। तख्त पर मिट्टी के ढेलों के साथ चूहों की गन्दगी पड़ी थी। कोने से फूल झाड़ू उठा, उन्होंने तख्त बटोरा और कूड़ा कागज के टुकड़े में उठा चूहों को जी भरकर सलवातें सुनाई-झाड़ू फिरे, जाने क्या कुतरने यहाँ आते हैं। चालाक ऐसे कि चूहेदानी की रोटी देखें मुँह फेर लें।

अमतुल को अरमान था कि इमामबाड़े और दालान की छत पक्की हो जाती। पहले हाथ तंग था, ऐसी बातें सोच नहीं सकती थीं। लड़कों ने हर बार माँ से वायदा किया, मगर पिछले पाँच वर्षों में कोई भी ऐसे मौसम में माँ से मिलने नहीं आया, जब छत डाली जा सकती थी। बात अगले मौसम के लिए टल जाती थी। इस बार खुद हिम्मत की तो निगोड़ा रहमान वेलदार ठेकेदार बन बैठा। कैसी अनहोनी सुनने में आती है। चारों तरफ अरसे से ऐसी कोई बात उनके कान में नहीं पड़ी जो मुनासिव लगती और जिसको सुनकर उनका जी खुश हो जाता।

कमरे का दरवाजा बन्द कर, कुंडी लगा अमतुल बाहर आई। कूड़े की पुड़िया फेंक हाथ धोने बैठी तो उँगलियों पर हिसाब लगाया कि अब तो मरम्मत का वक्त भी नहीं बचा है। हिसाब से मोहर्रम के चाँद को परसों हो जाना चाहिए। हाथ पाँछ दालान के कोने में रखा लकड़ी का बड़ा बक्स खोला और धूप में पड़े खटोले पर बक्स से निकाली गठरी खोल दी। पगड़ी, पटका, चादर, सफेद मलमल पर फैला दी। अब अमतुल का दिल इमामबाड़े की सजावट की तरफ मुड़ गया

था। मन-ही-मन उन्होंने फैसला ले लिया था कि जब वह किसी के आसरे बैठनेवाली नहीं हैं, खुद चूना भिगोएँगी और जहाँ तक हाथ जाएगा, कमरा पोत लेंगी। आखिर सरफराज की लड़कियों ने मिल जुलकर पिछली मोहर्रम में पूरा घर नहीं पोत डाला था!

मोहर्रम का चाँद हो गया था। औरतों ने चूड़ियाँ बढ़ा, नाक की कील छोड़कर कान, गले, पैर, हाथ के सारे जेवर उतार दिए थे। तसलों में हरा-काला रंग घुल गया था, जिसमें कपड़े रँग-रँगकर अलगनी पर फैलने लगे थे। अमतुल की मदद करने बड़ी बहन शाहेदा की पोती रौनक कानपुर से आ गई थी। अब दोनों दादी-पोती इमामबाड़े को धो-पोंछकर तख्त पर बिछी सफेद चादर पर जरी रख रही थीं। उसके छोटे दरों और खिड़कियों पर कुमकुमे लगा रही थीं।

लकड़ी के डंडे पर उभरी खूँटियों पर अलम लगा उसकी गरदन पर पटका लगाते हुए पोती ने दादी से पूछा, "दादी, जापने यह सब बनाए हैं?"

कभी दादी जवान थीं, पटापटी, लाली लचके का काम चुटकियों में कर डालती थीं। अब की लड़कियों को न कोई शौक है, न उमंग, बस किताबें खोले बैठी रहती हैं।

चाँदनी रात थी। इमामबाड़ा सजना जरूरी था। उसके बाद मातम होना था, जिसके लिए उन्होंने सलमान हलवाई के यहाँ से दो किलो बालूशाही दोपहर को ही मँगवा ली थी, वरना शाम तक तो उसकी दुकान पर लूट मच जाती है। मक्खियों तक को मिठाई का दाना नसीब नहीं होता हैं।

पटकों और ताबूत की चादर में इत्र लगा अमतुल ने सजे इमामबाड़े को नजर भरकर देखा और कमरे से बाहर निकल दरवाजा भेड़ दिया। अब दालान में फर्श बिछाना बाकी था। काम से निबटकर दोनों ने खाया। फिर अमतुल ने पानदान खोल मुने नारियल, छालिया, धनिया और लौंग की पुड़िया बाँधनी शुरू कर दी। दो माह न सही, कम-से-कम दस दिन तो आदमी हुसैन का गम मनाए और पान से होंठ मुँह लाल न करे। पुड़िया बाँधते-बाँधते अमतुल को एकाएक ध्यान आया कि कहीं बादल टप-टप बूँदें बरसाने आ गए तो? घबराकर आसमान ताका। उस पर तारे खिले अमतुल अपने इस तरह हौलने पर खुद हँस पड़ीं याद आया उनको अपने मियाँ का कहना, 'बहुत सोचती हो तुम, अमतुल! जो नहीं है उसको भी देख लेती हो।"

"दादी, मैं तैयार हूँ।" चोटियाँ गूँथ पोती बोली।

"बस, उठती हूँ," कहकर अमतुल ने नन्ही-नन्ही पुड़ियों से भरी छोटी-सी पीतल की ट्रे उठाई और दालान में बिछे फर्श के बीचोबीच आने वाली बीवियों के लिए रख दी।

टॉर्च लेकर दोनों दादी-पोती घर से निकलीं सुलाखी बेलदार घर के सामने से गुजरती हुई जब ज्योति कहारिन के घर के पास पहुँची तो उन्हें आता देख रमजान के इक्के की घोड़ी हमेशा की तरह जोर से हिनहिनाई और इससे पहले कि अमतुल अपना छुट्टा पाजामा समेटतीं, उन पर पेशाब की छीटें पड़ चुकी थीं। दोनों दादी-पोती खिसियाई पर लौटी और आधा धड़ 'गोता' कर दूसरे कपड़े पहन फिर निकली।

इस बार सीधे न जाकर पानी की टंकी के पीछे से चक्कर काट बतूल बेगम के घर पहुँचीं। मातम जोरों पर था। "हाय हुसेन" की आवाज बाहर तक आ रही थी। जब वे आँगन में पहुँचीं तो दूसरा नौहा शुरू हो गया था। वे दोनों भी जाकर खड़ी हो गई और लय में लय मिलाने लगी।

आग बरसाती दीपहर में हरा-काला कपड़ा पहने औरतें, बच्चे, लड़कियाँ एक घर से दूसरे घर मजलिस में शरीक होतीं। औरतें पसीना और आँसू पोंछती, फिर बर्फ का पानी लेकर पंखे में लेट जातीं। कमर सीधी कर फिर अगली पड़ोसिन के घर जमा होती, भर्राए गले से बातें करतीं। पाँचवी मोहर्रम तक आवाज इस काबिल नहीं रह जाती थी कि सुननेवाला मर्द-औरत की पहचान करता। फिर बात भी अहम थी कि साल भर में यही एक मौका था जब औरतें खुलेआम, ढलती रात को घर वापस आतीं, आपस में मिलकर दुखड़े कहतीं और सुनातीं। जब हदीस शुरू होती तो कर्बला के दर्दनाक बयान को सुनकर उनके अन्दर दबा दर्द का लावा फूट पड़ता। हुसैन के नाम पर जानू पीट-पीटकर रोती और वह सब कुछ आँसुओं में बहा देती, जो साल भर से अंधा कुआँ समझ अपने दिल में डालती रही थीं।

आज नवीं मोहर्रम थी अमतुल आज के दिन खान पर पाँच बख्श की नजर करवाती थीं। सुबह से हलुआ, पुलाव, कबाब, कोरमा पकाने में लगी थीं। शीरमाल और खमीरी रोटी के लिए वह नानबाई को कहलवा चुकी थीं। गरमी के तपते महीने में बावर्चीखाने में पसीने से डूबी अमतुल सूजी

भून रही थीं कि एकाएक ठंडी हवा का झोंका सारे बदन में सिहरन भर गया। अमतुल ने राहत की साँस ली। मगर जब यह हवा बराबर उनके पसीने को सुखाने लगी तो उन्होंने मुड़कर देखा, शाम उतर आई थी। सात बजे नजर होगी। उनके हाथ जल्दी से पतीली में पड़ी कफगीर को घुमाने लगे तभी बिजली-सी चमकी और बादल गरजा।

"इलाही खैर करना," गरम पतीली चूल्हे पर से उतार अमतुल जले पैर की बिल्ली की तरह बदहवास दर पर आन खड़ी हुई। दीपहर की गर्मी और फिर अंधड़ ने जाने कहाँ से काले काले मेघ बुला लिये थे अमतुल को काटो तो खून नहीं एकटक आसमान को ताकती खड़ी रह गई। अन्दर से हर धड़कन जैसे पूछ रही हो अब क्या होगा? अब क्या होगा?

"आज का दिन गुजर जाने दी, माबूद... कल जितना चाहे, बरसना। आज नबी की शब है। हुसैन एक दिन के मेहमान हैं। कल सुबह तो इमामबाड़ा बढ़ाना है... तुझे तेरे प्यारे हुसैन की प्यास की कसम है।" कहती हुई अमतुल वहीं आँगन में दोजानू हुई, फिर सिजदे में गिर गई।

'टप-टप' मोटी-मोटी बूँदें उनके काले दुपट्टे से ढके सिर और पीठ पर गिरने लगीं। अमतुल तड़पकर उठी और शिकायत भरी नजरों से उन्होंने आसमान को ताका। खामोशी पल भर में आँसू बन आँखों से टपकने लगी। मूसलाधार बारिश को खड़ी ताकती, हारी सी अमतुल में इतनी ताकत नहीं थी कि वह अन्दर इमामबाड़े को खोलकर देखती कि बारिश की बूँदें अन्दर दाखिल हुई हैं या नहीं।

बादल की गरज और बिजली की तड़प से बच्चों के दिल दहले जा रहे थे। बड़ी-बड़ी बूँदें तो पक्के मकान के प्लास्टर उखाड़ देती, यह तो फिर गरमी-सर्दी सहे बोसीदा मकान था जिसकी मिट्टी को गलते-बहते कितनी देर लगेगी। दालान में टपकते हिस्सों के नीचे पतीली रख अमतुल को जितनी दुआएँ मुसीबत की घड़ी टालने वाली याद थीं, वह पढ़ रही थीं। भय और अपमान के आसपास से अधमरी आवाज गले से बड़े मद्धिम सुरों से निकल रही थी। पोती दोनों तकिए कानों पर लगाए बिजली की चमक से खौफजदा बिस्तर पर औंधी पड़ी थी। बादल के घड़घड़ाने के बीच अमतुल को एकाएक लगा, जैसे उन्हें किसी ने पुकारा हो।

"अत्तो खाला! ओ असो खाला!..

"हाँ-हाँ, कौन है भाई?" दुआ जल्दी से खत्म कर उन्होंने खड़े होते हुए पूछा।

"हम सुलाखी! इमामबाड़े की छत पर तिरपाल डाल रहे हैं। इधर से दबा दिया है। इधर से खम्भे में बाँधना है। अब परेशानी की कोई बात नहीं है।"

'सुलाखी, इमामबाड़े की छत पर!' अमतुल के सारे बदन के रोंगटे खड़े हो गए। मुँह-ही-मुँह में बड़बड़ाई, "यह क्या कर डाला इस सिरफिरे ने ! मेरी मिट्टी पलीद कर दीन दुनिया तबाह कर डाली।"

"चलो, एक चिन्ता ती खत्म हुई।" सुलाखी ने दूसरी तरफ से निवटकर कहा। फिर हाथ आकाश की और

उठाकार जोर से चीखा, "खूब बरसो झमाझम ऊपर वाले प्यासी धरती दुआ देगी।"

"तू क्यों चढ़ा था वहाँ? किसने कहा था?" अतुल पर गुस्से का दौरा पड़ चुका था। सुलाखी जो इधर उत्तरता तो कौए की तरह उसे एक नहीं, दी चप्पलों की चोट याद आ जाती; मगर वह छत पर खड़ा छोटे से इमामबाड़े को भीगने से बचाने की कोशिश में जुटा पानी-बिजली से मुकाबला कर रहा था। उस तक अमतुल की आवाज नहीं पहुँच रही थी।

तूफान घंटे भर बाद ठहर गया, मगर अमतुल का दिल शंकाओं से भर उठा। सारी रात पलक नहीं झपकी। पाक-नापाक का वसवसा उन्हें बुलाने पर तुला था। अल्लाह-अल्लाह करके पौ फटी, मगर बूँदाबाँदी नहीं रुकी। इमामवाड़ा बढ़ाना था। अशूरे का दिन था। चूल्हा जलना नहीं था, न हलक में कुछ उतरना था। कब तक और कितनी दुआएँ पढ़ती अमतुल, सो मजबूर होकर इमामवाड़ा बढ़ाने उठीं। दस बजे ताजिया दफन होना है। सुलाखी की नादानी और अपनी मजबूरी ख़ुदा से कहती इमामबाड़े तक पहुँची और इस खयाल से उन्होंने दरवाज खोला कि कमरे में घुटनों तक पानी भरा होगा। जरी भीगकर उसमें तैर रही होगी और पटका, अलम भीगा पोचा खूँटियों से लटक रहा होगा। उन्होने बन्द आँखे खोली और धक से रह गई... लोबान की महक से इमामबाडा भरा था। आलम जगमगा रहे थे। पटके सूखे थे। जरी को पत्नियों उसी तरह सही सालिम झिलमिला रही थी। अमतुल गदगद हो उठीं। इमामबाड़े को बलाएँ ले

हाथों की उँगालियाँ कनपट्टी के पास से जाकर फोड़ी और जरी को चूमकर बोली, "मौला तेरी कुदरत के सदके! तूने अपनी इल बन्दी की लाज रख ली।"

"दादी! वंडरफुल दादी! सुलाखी के तिरपाल ने सब कुछ बचा लिया। पोती इमामबाड़े में दाखिल हो खुशी से चहकी, क्योंकि पानी से भरी पतलियों को फेंकते-फेंकते वह कल से बोर हो चुकी थी।

"उस नामुराद का नाम मत लो मेरे सामने!" अमतुल ने पोती को झिडका। उनका दिल खुदा के कहर से सहमा हुआ था। बन्दों को गलतियों को सजा तो ऊपरवाला देता है।

"दादी, एक तो उसने काम किया और आप हैं कि.." पोतों ने मुरझाए गजरों को उतारते हुए हैरत से कहा।

"तुम अपने बाप वाली बातें मुझसे न करना।... दोस्ती, प्यार अपनी जगह दीन-ईमान अपनी जगह।" अमतुल ने जरी पर पडी खाक को कागज पर समेटते हुए कहा।

"आपका गुस्सा रहमान पर है या सुलाखी पर?" पोती ने पटके तह करते हुए पूछा....

"दोनों पर ।"

"यानी कि एक की नेकी और दूसरे की लापरवाही को आँकने का आपके पास एक ही पैमाना है, दादी?" पोती ने हैरत से पलकें झपकाई।

"पैमाना मेरा बनाया हुआ नहीं है, बल्कि पुरखों के वक्त से चला आ रहा है।"

"दादी, अब इस दौर में पेट की वजह से रहमान अगर कुँबरपाल के घर काम कर रहा है तो सुलाखी हर हाल में आपके घर का काम करेगा, इस हकीकत से आप कैसे आँख बन्द कर सकती हैं?"

"तभी तो जमाने में आग लगी है, जो हर धान सत्ताईस रुपए सेर बिक रहा है।" अमतुल ने बात खत्म करने के लहजे में कहाँ पोती ने दादी का चेहरा देखा और मुस्कुराकर मलमल की गठरी बाँध लकड़ी के बड़े बक्स में रखा। सूखे गजरों का थैला इमामबाड़े की चौखट पर रख अमतुल ने गहरी साँस ली।

दूर गली से अलविदाई दस्ते से गुजरने को आवाज नजदीक आती सुनाई पड़ी। अमतुल की आँखें भर आई। आज हुसैन पर से रुखसत हो रहे हैं। सूखे गजरों का थैला उठा यह दरवाजे तक आई कि कर्बला जाने वालों के हवाले यह कर दे, ताकि ताजिया के साथ यह भी दफन हो जाए।

दस्ता गुजर जाने के बाद हर साल की तरह ननकू पासी, भोला जुलाहे और ज्योति कहारिन के घर की औरतें-बच्चों के लिए 'खाक' लेने पहुँच गई। अमतुल ने पुड़िया खोल चुटकी भर-भरकर लोबान और अगरबत्ती का गुल उनमें बाँटा, जो किसी ने बच्चे को चटा खुद माथे-सीने पर लगाया, किसी ने उसे कागज पर सँभाला।

"सुलाखी के बेटवा के लिए भी दे देव, खाला" ज्योति कहारिन की बहू बोली।

"क्यों? उसके बहू के पैरों में मेहँदी लगी है क्या?" रूठे स्वर से अमतुल बोली।

"खाला की बात।" बूढ़ी पासिन हँस पड़ी।

"अरे खाला, उसका हाल-बेहाल है। रात को कहर टूटा था। उसी में भींग गया। जाने कहाँ काम पर गया था। अब बुखार से तप रहा है।"

"कहती तो ऐसे हो जैसे चना डाल दो तो भुन जाए।" कहने को सख्त बात अमतुल कह गई, मगर चढ़ी तेवरी ढीली जरूर पढ़ गई। मगर दिल में एकाएक हौल समाई कि कहीं सुलाखी को 'बेअदबी' की सजा तो नहीं भुगतनी पड़ेगी। पोती ने गहरी नजरों से दादी को ताका, जहाँ तनी कमान टूटने का भाव नाच रहा था। औरतें 'खाक' लेकर चली गई। उनका विश्वास अमतुल के इमामदाड़े पर है। उसके इमाम पर भी है, तभी तो वह मन्नतें माँगती, चढ़ावे चढ़ाती मगर अमतुल..? अमतुल ने घबराकर पोती की तरफ देखा, फिर सिर झुका लिया। उनके चेहरे पर पीलापन उतर आया था।

दिन निकल आया था धूप भी खिल उठी थी। उमस गजब की थी। कर्बला से मर्द घर लौट आए थे। हुसैन की शहादत का दिन था सुबह से सब विना खाए-पिए थे। चूल्हा भी ठंडा पड़ा था। अमतुल ने पड़ी देखी, नौ बज रहे थे। दुआ की किताब बन्द कर उन्होंने बावर्चीखाने का रुख किया। काली मसूर की भीगी दाल को चूल्हे पर चढ़ा चौलाई का

साग काटने बैठ गई। पोती भी सुस्त सी आकर चावल धोने लगी।

"दादी, सबके घर आज के दिन यही खाना क्यों पकता है?"

"तुम सवाल बहुत पूछती हो"कहकर अमतुल ने साग छौंका।

"समझ गई, पुरखों के जमाने से चला आ रहा होगा।" ठंडी साँस भर पोती धीरे से बोली।

अमतुल किसी गहरी सोच में थीं। उन्हें भी तो एक सवाल बचपन से परेशान करता रहा है कि दसवीं से सारे दिन भूखे रहने के बाद हुसैन की शहादत के बाद खाना क्यों चार बजे खाया जाता है? कायदे से तो शहादत के बाद फाका करना चाहिए। मगर इस सवाल को पूछने की हिम्मत उनमें नहीं थी, अब एक नया सवाल उन्हें मथ रहा था।

'सुलाखी ने पड़ोसी का फर्ज निभा दिया। इमामबाड़ा भीगने और बरबाद होने से बच गया न, यह तो खुश होने वाली बात है, फिर में क्यों अनहोनी से डर रही हूँ?"

दोपहर ढल रही थी। दस्तरखान पर तीन डोंगे और दो तश्तरियाँ रखी हुई थी। दादी-पोती आमने-सामने बैठी थी। अतुल को जाने क्यों सुलाखी याद आ रहा था। प्लेट में खाना निकाल जैसे ही पहला लुकमा तोड़ा तो कान बज उठे – 'खाला, अत्तो खाला! अब परेशानी की कोई बात नहीं है।

बचपन में सुलाखी की माँ और अमतुल में बड़ी दोस्ती थी। चचा के घर शादी हुई, सो मायका ससुराल एक घर में रहा और बिनती का साथ न छूटा, जो उनके पर सुबह से रात तक जमी रहती थी। बिनती व्याह के साल भर बाद जब

विधवा होकर मायके लौटी तो फिर गुइँयापा दर्द का रिश्ता बना बैठा। जब बिनती को साँप ने काटा, उस वक्त सुलाखी छह महीने का था।

उनकी गोद भी हरी थी। रात को जब बिनती की चिता ठंडी पड़ी तो हलकान होते सुलाखी को वह नहीं देख पाई थी और बिना सोचे-समझे गोद में लिटा उसका पेट भरा था। अपने बेटे का पेट काट वह रात को सुलाखी को गोद जरूर लेती; मगर गरीब का बेटा जल्द ही रोटी खाना सीख गया। बिनती के मरने के बाद यह भी विधवा हो गई। कस्बे के स्कूल में पढ़े चारों लड़के शहर में नौकरी पा गए और वहीं के गए। अब हाँके-पुकारे को बचा था सखी का लड़का सुलाखी... मुँह की तरफ बढ़ा निवाला वापस अमतुल ने प्लेट में रख दिया। उनका दिल बिगड़ने लगा। कुछ देर चुपचाप बैठी रहीं, फिर बटुआ बक्स से निकाल पुड़िया ले आगे बढ़ी।

"खाना छोड़कर कहाँ जा रही हैं, दादी?" भूखी पोती मिनमिनाई।

"तुम खाना खाओ, मैं अभी आई।"

सुलाखी के घर की चौखट पर जब अमतुल पहुँची तो उसके माथे पर ठंडे पानी की पट्टी उसकी पत्नी रख रही थी। पास के खटोले पर कथरी पर उसका बेटा मुँह में चुसनी लगाए सो रहा था।

"खाला, तुम यहाँ!" चीक उठी सुलाखी की पत्नी।

"बुखार तो बहुत तेज है।" अमतुल ने माथे पर हाथ रखा।

अमतुल कुछ देर खड़ी रहीं, बेचैन, परेशान सी, फिर कुछ सोचकर उन्होंने खाक की पुड़िया निकाल उसे चुटकी में भर, सुलाखी के माथे और सीने पर लगा, उसका बाजू पकड़ मुँह-ही मुँह में कुछ दुआ पड़कर दम ली। फिर धीरे से बोली, "अल्लाह ने चाहा तो बुखार फौरन उतर जाएगा।"

"सुबह से दो बार चक्कर लगा चुके हैं अवतार पनवाड़ी के काम का हरजा हो रहा है। भला तुम्ही बताओ, खाला, ऐसी हालत में यह कैसे जाएँ?"

"कहीं और काम पकड़ने की जरूरत नहीं है। यह लो रुपए। जैसे ही बुखार उतरे, सुलाखी से कहना, कमरे और दालान पर पक्की छत अब पड़ जाए। चहल्लुम आते कितनी देर लगेगी, अच्छा मैं फिर आऊँगी ।"

"वह तो कब से चिन्ता में डूबे रहे। आपको दुखी देख उनका मन खराव हो जाता है। कल दौड़कर गए, कल्लू के घर से तिरपाल उठाकर आए और..

अमतुल ठहरीं नहीं, तेज कदम से वापस आई। अब उन्हें बड़ी जोरों की भूख लग रही थी। दस्तरखान पर बैठ जल्दी-जल्दी से निवाला निगलने लगीं।

हाथ धोते हुए पोती ने उन्हें देखा और हैरत से पूछा, "क्या हुआ, दादी?"

"कुछ नहीं।" गरदन हिलाकर जवाब मिला पोती को अपनी दादी से प्यार है, मगर उनकी कुछ बातें उसे परेशान कर देती है। उसकी नजर में तो सारे इनसान एक जैसे हैं, फिर...?

शवे आशूरा का प्रोग्राम लखनऊ से आने वाला है। सारे घर की बत्ती बुझाए दादी रेडियो सुन रही हैं। मुँह पर दुपट्टा रख फूट-फूटकर रोती "मासूम असगर को भी जालिमों ने पानी न दिया, हुसैन को धोखे से बहुलाकर..."

पोती गौर से दादी को देखती है, परेशानी होती है कि चौदह साल पुराने गम पर इस तरह दादी पिघल जाती हैं, मगर..

भोली-भाली पोती को क्या पता कि हर चीज को बदलने का एक समय होता है। तभी तो अमतुल अपनी नादानी से शर्मिंदा हो पुराने गम में नया गम मिला रही हैं, जिनके चार लड़के शहर की भीड़ में खो गए हैं। उन्हें ढूँढ़ने में उन्हें होश ही न रहा कि पाँचवाँ जो पास में है, उसे समझती। अव शुक्राने के इन आँसुओं को पोती नहीं समझ सकती है अभी उसकी उम्र ही क्या है।

~@~